पुस्तक :
कपिल

लेखक :
आचार्य अमृतकुमार

प्रकाशक .
श्री मुनीलाल जैन

लिए
पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थमाला
अम्बाला शहर (पजाब)

प्रति .
एक सहस्र

मूल्य
डेढ रुपया

दिनाक
२१ नवम्बर, १६६४

मुद्रक
मुन्शी लाल गुप्त
स्वदेश प्रिण्टर्स, तेलीपाडा
चौड़ा रास्ता, जयपुर

अपनी बात

कपिल क्यों ? और क्या ?

आगम साहित्य अथाह ज्ञान का भण्डार है। उसमें सहस्रों ऐसी कथाएँ हैं जो शिक्षा प्रद भी हैं और रोचक भी हैं। परन्तु उक्त कथा साहित्य का रचना काल अर्धमागधी भाषा का युग है। अतः ये कथाएँ तत्कालीन शैली में लिखी होने के कारण वर्तमान युग के कथा पाठक को अपनी ओर पूर्ण रूप से आकर्षित नहीं कर पाती। आज अधिकतर धार्मिक दृष्टि से ही उनका मूल्य रह गया है। यदि कहानी के वर्तमान विकसित एवं उन्नत युग में उन्हीं कथा-वस्तुओं को उपस्थित कर दिया जाय तो वे रचनात्मक साहित्य के भण्डार में आशातीत अभिवृद्धि कर सकती हैं। इसके साथ-साथ मानव समाज के नैतिक जागरण में भी ये कथाएँ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इस विश्वास की पृष्ठ भूमि में ही 'कपिल' अपने पाठकों के कर-कमलों में आ रहा है।

'कपिल' के द्वारा मानवीय समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास का कथानक यद्यपि उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्याय से लिया गया है फिर भी आपको ऐसा प्रतीत होगा मानों 'कपिल' हमारा जाना पहचाना व्यक्ति है। सामाजिक धार्मिक आर्थिक और राजनैतिक कितनी ही समस्याओं का समाधान आपको कपिल के चरित्र में मिल सकेगा। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र पाठकों को इसी जगत के जीते प्राणी प्रतीत होंगे। कहीं-कहीं तो ऐसा लगेगा मानो कपिल के पात्र हमने अपने किसी मुहल्ले नगर या प्रदेश के किसी कोने में स्वयं अपनी आँख से देखे हैं।

अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए मनुष्य कितने दुष्कर्म कर सकता है, यह शकुनीदत्त का चरित्र आपको बतायेगा। माँ अपने पुत्र के लिए क्या कुछ करती है, वह सास होने पर अपनी बहू के लिए किस प्रकार अपने प्राणो पर खेल सकती है? और व्यक्ति अपराध क्यो करता है? इन सब बातो के उत्तर आपको कपिल में मिलेगे। किसानो की भूमि की भूख और भू स्वामियो की शोषण वृत्तियाँ कितनी जटिल समस्याओ का सूत्रपात कर सकती हैं, परन्तु भूमि की समस्याओ को किस प्रकार शांति पूर्वक सुलझाया जा सकता है, यही इस उपन्यास का मूल्यवान उद्देश्य है।

पाठको की रुचि का निर्णय लेने के लिए कपिल का पूर्वार्द्ध ही प्रकाशित किया जा रहा है। यदि यह प्रकाशन जनता जनार्दन को रुचिकर हुआ तो शीघ्र ही दूसरा उत्तरार्ध भी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायेगा।

अन्त मे—उपन्यास मे रही हुई त्रुटियो के लिए क्षमा प्रार्थना करना भी यहाँ अपेक्षित है। इन्ही कुछ कारणो के साथ कपिल उपन्यास पाठको की सेवा मे अर्पित करते हुए मैं अत्यत सुखानुभव कर रहा हूँ।

शुभमस्तु सर्व जगत

जयपुर
२१—११—६४

आचार्य अमृतकुमार

प्रकाशक की ओर से

स्वर्गीय पंजाब केसरी पूज्य श्री काशीराम जी महाराज पंजाब के एक प्रतिभा सम्पन्न आचार्य हुए हैं। स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्री हर्ष चन्द्रजी म उन्हीं के अनेक शिष्यों में से एक गुणी महात्मा थे। वे चरित्र को साक्षात् मूर्ति होने के साथ-साथ आशु कवि भी थे। बातों ही बातों में कविता लिख देना उनके बायें हाथ का काम था। स्वर भी उनका बड़ा ही मधुर था। उन्होंने अपने जीवन काल में हजारों कविताएँ लिखी थीं। दुर्भाग्य वश वे सभी कविताएँ संग्रहीत नहीं हो पायी हैं। उनकी कविताओं में उनके साक्षात् दर्शन जैसा आनन्द आता है। साहित्यकारों का कथन है कि साहित्य में साहित्यकार की आत्मा बोलती है। उसी से साहित्य सजीव रहता है। इस प्रकार के साहित्य की आज समाज को अत्यन्त आवश्यकता है।

पूज्यश्री काशीराम स्मृति ग्रन्थमाला इसी उद्‌देश्य की पूर्ति का प्रयत्न कर रही है। श्री हर्षकथा साहित्यमाला उसी का एक भाग है। यह प्रयास कविश्री हर्षचन्द्र जी महाराज की स्मृति को प्रेरणास्पद बनाने की दृष्टि से किया गया है। अब तक इस विभाग से चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत उपन्यास 'कपिल' भी इसी स्मृति ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकाशन में जिन दानी महानुभावों ने अपना आर्थिक सहयोग दिया है हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। आशा है, अन्य महानुभाव भी उनका अनुकरण करके अपने द्रव्य का सदुपयोग करेंगे।

निवेदक

मुन्नीलाल जैन

मन्त्री पूज्यश्री काशीराम स्मृति ग्रन्थमाला

अम्बाला शहर।

उपन्यास का मूलस्रोत

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० ८ गा० १७

कपिल

दिन का यौवन उतार पर है। भानुदेव पश्चिमी क्षितिज की ओर अग्रसर हो रहे हैं। छाया जो कुछ घण्टे पूर्व सूर्य के अग्नि-बाणों से त्राण पाने के लिए दीवारों के चरणों में छुप कर बैठ गयी थी सूर्य किरणों के अभिमान मद को ढलते देख कर हाथ पाँव पसारती चार है। बसंत ऋतु की भाँति परम हो रही धूपों का ज्वर उतर गया है।

कौशाम्बी के एक मोहल्ले में मकानों के जमघट में खड़ा एक भव्य रंग रोगन और पलस्तर से सजा हुआ अपने रूप पर गर्व कर रहा है। सड़क के किनारे ही उसमें एक बैठक है जिसके प्रत्येक द्वार पर रं... बिरंगे आवरण हवा से लहरा रहे हैं। बीच के द्वार पर पड़ा परदा ए... कोने मे समेटा हुआ है और कमरे में पड़े आसनों तथा कमरे की सा... सज्जा की एक झलक सामने से निकलने वाले व्यक्ति को रोक सकती है। उसी बैठक का एक द्वार अन्दर भवन में खुलता है। कमरे मे पीछे... और दीवार के सहारे रखे आसनों पर बैठे दो व्यक्ति वार्तालाप क... रहे हैं। ऊँचे आसन पर बैठे व्यक्ति की मूँछे ऐंठी हुई है और उसक... आँखों से कुटिलता झाँक रही रही है। गदराए शरीर का यह व्यक्ति ग... मे एक दुपट्टा डाले है और आसन के साथ ही उसके हाथ की पता... बड़ी रखी है। उसके कुर्ते की बाईं चौकी है जिसमे एक हाथ और ख...

सकता है। उसके माथे पर चन्दन मे त्रिशूल बना हुआ है। और दूसरा व्यक्ति हृष्टपुष्ट, बडो-बडो मूँछो वाला है, उसकी उबली हुई आँखो मे भयानकता छाई है। चौडी छाती चुस्त वस्त्र, बल भरे हुए और भुजाएँ भारी ऊपर से नीचे तक देखने से ऐसा प्रतीत होता हैं मानो शारीरिक बल की प्रतियोगिताओ मे पुरस्कार पाने की इच्छा से वह देह बलिष्ठ करने की ओर अधिक ध्यान देता हो। उच्चासन पर बैठे व्यक्ति का स्वर कभी कभी ऊँचा हो जाता है।

"सांप का बेटा सांप ही होता है, शम्भू! तुम वर्तमान को देखते हो भविष्य को नही।"

"हां सांप का बेटा तो सांप होता ही है, परन्तु

"परन्तु क्या ?"

"परन्तु सपोलिया एक बडे विषधर नाग का कर क्या सकता हैं ?"

"तुम नही समझते शम्भू! सपोलिया कभी सांप भी बनेगा और तब "

"और तब तक आप अपने पद को इतना जकड चुके होगे कि आप के फन की ओर हाथ चलाने तक का साहस किसी को न होगा।"

"ओह! मै तुम्हे कैसे समझाऊँ कि मुझे अपनी ही नही अपने परिवार और अपनी सन्तान की चिन्ता है। जो चीज मैंने इतने यत्न से प्राप्त की है, वह फिर काश्यप परिवार के हाथो मे नही पहुँचनी चाहिए।"

"और अब इसकी कोई सभावना नही है। इस योग्य बनने के लिए कि राज-पुरोहित का पद प्राप्त किया जा सके पर्याप्त साधनो की आवश्यकता है और काश्यप परिवार के हाथो से समस्त साधन छिन चुके हैं। आप की दया मे अब उनको तो रोटियो के भी लाले पड गये है।

शकुनी दत्त ने अपनी मूछों पर हाथ फेरा। अधरों पर कुटिल मुस्कान उभर आई।

'किन्तु मुझे इस से ही सन्तोष नहीं है सम्भू। मैं चाहता हूं कि वह टिमटिमाता दीपक ही बुझ जाये जो काश्यप के घर में अब भी चमक रहा है। तुम नहीं जानते मुझे काश्यप के मनहूस घर में प्रकाश की एक भी रेखा देखकर कितना दुख होता है। मेरा हृदय कांप जाता है। वह एक खतरा है उसको मिटाना ही होगा और यह काम तुम केवल तुम कर सकते हो।

सम्भू एक बार सिहर उठा पीछा छुड़ाने का एक बार पुनः प्रयत्न किया — 'पण्डित जी। आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने की क्षमता मुझ में नहीं है तो भी व्यर्थ एक बालक के रक्त से अपने हाथ रंगने में कोई बीरता नहीं। अतः सोचता हूं'"

क्या खाक सोचते हो ?—शकुनी दत्त की आंखें जल उठीं उसने आवेश में आकर कहा—तुम्हारे पास बल है पशु बल। बुद्धि नहीं है सम्भू। तुम सोचने का कष्ट मत किया करो।

सम्भू के हृदय में हूल चुभ गई, पर अपने मनोभाव छुपा कर बोला 'पण्डित जी। आपकी आज्ञा सिर पर आँखों प। मुझे क्या आपत्ति है बस यु हा कहता था कहीं लोग यह न कहें कि पण्डित शकुनी दत्त ने अपने स्वार्थ के लिए राजपुरोहित काश्यप की वश बेल ही कतर डाली।

'लाम जीभना जानता है दूसरों को आई में कोई सिर नहीं देता। सब लोग स्वार्थी है। पीछे कुछ कहते है सामने कुछ। ऐसे कायरों की चिन्ता मुझे नहीं।—शकुनी दत्त ने कठोर मुद्रा में कहा—यह मत भूलो कि यह लोग जिनसे तुम डरते हो चढ़ते सूरज की पूजा करते है।

"मैं ?" क्या मैं डरता हूं ? नहीं कदापि नहीं मुझे अपने भुज

बल पर विश्वास है आँख उठा कर देख तो ले कोई मेरी ओर। कच्चा न चबा जाऊं तो ।" शम्भू के चेहरे की मास पेशियाँ तन गई। शेष शब्द दांतो की चक्की मे पिस गए।

शकुनी दत्त का मुख मण्डल खिल उठा। शम्भू की पीठ पर थपकी देते हुए कहा—"शम्भू ! हाथी चला जाता है कुत्ते भौंकते रह जाते हैं। हां देखो काम ऐसे हो कि साप भी मर जायं और लाठी भी ।"

"लाठी टूट गई तो फिर बात ही क्या है ?" उत्साह पूर्वक शम्भू बोला। बन्दूक मे गोली पड चुकी थी। वीरता का अन्धा नशा शम्भू की आंखो पर छा चुका था।

"वह देखो ! सामने से आ रहा है वह कपिल ! बस यही है वह सपोलिया।"—शकुनी दत्त ने अंगुली से सकेत करते हुए कहा। शम्भू झुककर द्वार के बाहर की ओर झांकने लगा।

"क्या यही है काश्यप का पुत्र ?"

"हां, हां यही है एक मात्र सपोलिया।"

"अभी तो बहुत छोटा है, कितना प्यारा बालक है ?"

शकुनी दत्त ने आंखे तरेर कर उसकी ओर देखा। शम्भू तनिक सा कांप उठा।

"देखो, इसका पीछा करो' 'और हां बहुत सावधानी से'''

शम्भू अपने स्थान से उठा और कमरे मे रक्खे नए साज सज्जा के सामान से बचते हुए तेजी मे कमरे के बाहर हो गया। शकुनी दत्त विजय की आशा की कल्पना से ही प्रफुल्लित हो गया और गर्व से अपने चारो ओर सजे सामान पर दृष्टि डालने लगा। आसन, तकिए, गद्दे, कालीन और दीप दान सभी नए थे और कमरे की दीवारो पर अभी कुछ दिन पूर्व ही रग तथा बेल-बूटों का काम हुआ ल्लन

के रूप में सजा यह कमरा उसके घर में वैभव की नव मादकता का बहार का प्रमाण था। उसकी दृष्टि कमरे का सावधानी से निरीक्षण कर रही थी कहीं कोई चीज मैली तो नहीं हुई, कदाचित् इसकी खोज कर ही रही थीं—उसकी आँखें।

स्वामी-भक्त धम्मू बालक के पीछे हो लिया। एक मोड़ पर जाकर उसने पुकारा— 'कपिल !—ओ कपिल।

पीछे घूम कर कपिल ने कहा— 'हाँ"

'कहाँ जा रहा है ?'

'आज माताजी का व्रत है वाटिका से फूल लेने जाता हूँ पूजा के लिए।"

'फूल लेने इधर क्यों जाता है मेरे साथ चल—न मैं तुझे बढ़िया बढ़िया फूल दूंगा।

बालक कुछ सोच में पड़ गया।

मेरे चल भी——"

धम्मू ने उसकी बाँह पकड़ली।

नन्ही कोमल बाँह में कुछ धक्का लगा। बालक ने छुड़ाने का प्रयत्न किया— 'मुझे छोड़ दो। मैं अपने आप ले आऊँगा फूल।"

'तू बड़ा हठी बालक है। मेरे साथ चल मैं भी तो फूल लेने ही जा रहा हूँ।

'तो क्या तुम्हारी माँ ने भी व्रत रक्खा है ?"

हाँ हाँ नहीं तो क्या है।

और बालक धम्मू के साथ चल पड़ा। कुछ दूर जाकर धम्मू ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और इधर-उधर की बातें करता हुआ वह चल पड़ा नगर से बाहर की ओर।

"तुम हो कौन ? तुम्हारा घर कहा है ? भोले वालक ने पूछना आरम्भ किया।'

"मैं ? · मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ।"

"हमारे घर क्यो नही आया करते ?"

"वस यूँ ही · "

"यूँ ही क्यो !"

शम्भू ने वालक को डपट दिया।

"शम्भू ! किधर चले वालक को लेकर।" पीछे मे आवाज आई।

शम्भू के हृदय मॅ कम्पन हुआ। पीछे घूम कर देखा उसका ही एक पडौसी था। वह हकला गया "वम वस ई घ "

"अरे यह तो तुम्हारा लडका नही कोई और ही है - उसने वालक को देखते हुए कहा—किसका वालक लिए फिरते हो ?'

अपने आपको सम्हालते हुए उसने कहा—"वह , वह अपने मित्र हैं ना। भला क्या नाम है उनका "

वालक तुरन्त वोल पडा—"मेरे पिताजी का नाम प० काश्यप।"

"हां, हां प० कश्यप का हो है यह पुत्र।"

आगन्तुक ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा तो यह है स्वर्गीय पण्डितजी का सुपुत्र।"

पीछा छुडाने के लिए शम्भू आगे वढने लगा। उसका पडौसी साथ साथ चलने लगा।

"भई पण्डित काश्यप भी थे वडे विद्वान्, सुहृदय, निर्धन को सहायता किया करते थे पैसे से तो उन्हें मोह ही नही था। कभी उनके द्वार मे कोई खाली हाथ नहीं गया। आज तक उनका गुणगान होता

है। पर देखो शम्भू ! अपने अपने भाग्य की बात है। पण्डितजी चले गए तो उनका वैभव भी उनके साथ ही गया। मरते ही घर में चोरी हो गई सब कुछ चला गया चोरी में। अब सुनता हूँ बहुत बुरा हाल है उनके घर का।"

—अन्तिम शब्द उसने बहुत धीरे से कहे।

शम्भू की आँखों में रक्त उतर रहा था उसका जी चाहता था कि अपने पड़ौसी को धक्का देकर गिरावे और स्वयं भाग जावे बालक को लेकर।

'कहाँ से आ रहे हो बालक को ? उसने प्रश्न किया।

शम्भू ने दाँत पीसे। पर ज्यों ही पड़ौसी की दृष्टि अपने चेहरे की ओर देखी कृत्रिम मुस्कान लाते हुए कहा—"बस इधर ही आ रहा था।

'क्या गुरुकुल की ओर ?"

'हाँ हाँ गुरुकुल ही जा रहा हूँ।" प्रसन्न होकर शम्भू बोला और मुँह बिचका लिया।

'मैं भी उधर ही जा रहा हूँ लड़के के बारे में अध्यापक से कुछ बात करनी है।"

शम्भू को बड़ा क्रोध आया। उसी समय बालक बोल उठा—कहाँ है इधर वाटिका ? देर हो रही है। माताजी मारेंगी।

'अभी आई जाती है वाटिका—शम्भू ने बालक को बहलाते के लिए कहा और फिर अपने साथ चल रहे पड़ौसी को सम्बोधित करते हुए कहा—बालक जी पढ़ने से जी चुराते हैं। बड़े बहाने करके ले जाना पड़ता है गुरुकुल तक।"

"मैं गुरुकुल नहीं जाऊँगा—बालक कपिल चिल्लाया—मैं तो माता जी के लिए फूल ले जाऊँगा। मुझे छोड़ दो-मुझे छोड़ दो।

बालक मचल उठा। शम्भू की पकड और कठोर हो गई।

बालक पढने से कितना घबराते हैं, यह देख, सोचकर शम्भू के पडौसी को हँसी आ रही थी—"शम्भू! बालको को तो बस खेल कूद चाहिए।"

शम्भू मन ही मन जलभुन रहा था।

"लो गुरुकुल आ गया। अब देखे यह पगला कैसे जान बचाता है?" पडौसी ने कहा।

शम्भू रुक गया।

"आओ! शम्भू रुक क्यो गए?

पडौसी की बात सुनकर शम्भू को क्रोध तो आया, पर अपने क्रोध को व्यक्त न कर सका। उधर कपिल ने रोना आरम्भ कर दिया था, वह उसके हाथो से निकल भागने के लिए सघर्ष कर रहा था। शिकारी के जाल में आए पक्षी की भाँति फडफडा रहा था।" मैं नही जाऊँगा गुरुकुल। मुझे माँ मारेगी, मैं फूल लेने आया हूँ।" बारबार वह चिल्लाता और शम्भू उसे डाँट डपट कर चुप करने का प्रयत्न करता। कई बार इच्छा हुई कि वह उसे वही सडक पर पटक दे, पर डरता था कही पडौसी को कोई सन्देह न हो जाये। पडौसी के आग्रह से विवश होकर उसे गुरुकुल में प्रवेश करना ही पडा। उसने सोचा बालक के प्रति उसकी सहानुभूति का परिचय पडौसी को मिलेगा तो एक साक्षी उसके अपराध को छुपाने के लिए तैयार हो जायेगा।

रोते चिल्लाते बालक पर ही सर्व प्रथम शिक्षक का ध्यान गया।

बालक को स्वय लेकर छाती मे लगाया। बडे स्नेह से उसे पुचकारा और उसे बहलाने के लिए बहुत से खिलौने, रग बिरगी वस्तुएँ दिखाई, मुँह से विभिन्न प्रकार की बोलियाँ निकाली, पर बालक न माना वह बार-बार कहता था—"मुझे छोड दो, मुझे माँ मारेगी, मैं फूल लेने आया हूँ, देर हो रही है।"

पर उसकी एक न सुनी जाती।

शिक्षक ने जम्बू को लक्ष्य करके कहा— "आपने बड़ा हठी बना दिया है अपने बेटे को।"

जम्बू का साथी बोल उठा— "यह जम्बू का लड़का थोड़े ही है, यह तो स्वर्गीय पं० काश्यप का सुपुत्र है।"

"क्या स्वर्गीय राजपुरोहित का?" विस्मय पूर्वक शिक्षक ने पूछा।

"जी हाँ" जम्बू को कहना पड़ा।

शिक्षक ने तुरन्त बालक को छोड़ दिया। बोला 'क्षमा कीजिए। हम इस बालक को अपने गुरुकुल में भरती नहीं कर सकते। राजपुरोहित का ऐसा ही आदेश है। जानते हैं आप? वे चाहें तो हमारे गुरुकुल को मिलने वाली राज्यकीय सहायता बन्द करा दें।

बालक छूटते ही तीव्रगति से भागा।

"जम्बू! फिर तू क्यों इस काम में हाथ डालता है!" बालक को पकड़ने वाले जम्बू का हाथ पकड़ कर उसके पड़ौसी ने धीरे से कहा।

और जम्बू के ओठों पर खिसियानी हँसी उभर आई। वह पश्चाताप करता रह गया।

ज्योंही वे दोनों गुरुकुल से बाहर आये। दीवार पर बैठे कबूतर पर बिल्ली ने झपट्टा मारा, पर कबूतर दीवार से नीचे गिर पड़ा और बिल्ली के दीवार से नीचे आने से पूर्व ही कबूतर उड़ गया। जम्बू के पड़ौसी ने कहा—"जम्बू! देखा? जन्म मरण किसी प्राणी के वश की बात थोड़े ही है। जिसे जिस योनि में जितने दिन रहना है उतने दिन रहना ही है। मृत्यु का समय नहीं आता तो हत्यारा कितना भी प्रयास क्यों न करे प्राणी बच ही निकलता है। क्यों जम्बू! लोगों को दूसरों के प्राण लेने में क्या मिलता है?

"वक वास वन्द करो।" क्रुद्ध होकर शम्भू ने कहा। उस समय वह अपने को नियन्त्रित न रख पाया और पडौसी उसकी ओर देखता ही रह गया।

× ×

सेवक शकुनी दत्त को वस्त्र पहना रहा था। भीत में लगे ६ फुट लम्बे दर्पण मे अपने नए वस्त्रो की छवि को निहार कर शकुनी दत्त पुलकित हो रहा था। अपने इस ऐश्वर्य से वह प्रफुल्लित था ? उसके वदन की काति उस का प्रमाण थी।

शकुनी दत्त पैर लटका कर ऊँचे आसन पर बैठ गया और अपने पैर कुछ आगे वढा दिए, सेवक ने झाड पोछकर जूतिया पैरो मे डाली।

शम्भू को कमरे मे प्रवेश करते देख सेवक को वहा से चले जाने का आदेश देकर पण्डितजी ने प्रश्न वाचक दृष्टि शम्भू पर डाली और भृकुटि को तनिक सा ऊपर खीच कर तुरन्त यथा स्थान जाने दिया।

शम्भू फिर भी मौन रहा। कुछ शिथिल सा था वह। सामने के आसन सर बैठते ही बोला– पण्डित जी! क्या वताऊँ ? एक मूर्ख ने आकर काम खराब कर दिया।"

शकुनी दत्त के चेहरे की कांति जाती रही। एक बार खेद उमरा और फिर आखो में लाली उभर आई—"शम्भू! रोते गए मुरदे की खबर लाये ?"

"पण्डित जी! मैं क्या करता वह मेरे साथ-साथ चलने लगा, उसने पीछा ही नही छोडा।"—शम्भू ने अपनी असमर्थता प्रकट करने और अपने को निरपराधी सिद्ध करने के लिए अपने पडौसी को दवे शब्दो मे दो चार गालिया दी।

शकुनी दत्त को जैसे विद्युत् का झटका लगा हो। वह आसन से उठा और कमरे में इधर से उधर चक्कर लगाने लगा। बीच में रखे पुष्प-दान को एक बार ठोकर से मारकर नीचे गिरा दिया और खड़ा होकर बोला — "इन सेवकों से तो नाक में दम आ गया। मूर्ख कहीं के। फूल तक सजाना नहीं जानते।"

क्या कमी थी फूलों के सजाने में, शम्भू इस बात को न समझ पाया।

अकस्मात् शम्भू के सामने पहुँच कर शकुनी दत्त रुक गया और गरज कर बोला — "मैं पहले ही जानता था कि तुम इस काम को टालना चाहते हो। एक छोटा सा बालक पत्री मे न पकड़ा जा सका धिक्कार है तुम्हारी वीरता को।"

शम्भू को अपनी वीरता का अभिमान है कोई उसके साहस का मुँह चिढ़ाए यह उसे कभी सहन नहीं होता। वह प्रायः ऐसी बातों पर बिगड़ जाया करता है। और शकुनी दत्त उसकी कमजोरियों को भली भाँति जानता है वह उसकी दुखती रग पहचानता है चोट वहीं करता है जहाँ पर लगी थोड़ी सी भी ठेस शम्भू को विचलित कर देती है।

शकुनी दत्त ने तिलमिलाते शम्भू को देखकर एक बार फिर चोट की — "अरे शम्भू! गाल बजाना जानते हो बस। कुछ होता हु जाता है नहीं। इतने तनिक से काम को भी तुम नहीं कर सकते तो क्या फोड़े पर मरहम बना कर अपने जाओगे।"

शम्भू के बदन पर अरुणाई झलक आयी। उसकी आँखों में अंगारे झाँकने लगे। मुट्ठियाँ भिंच गयीं। कनपटियाँ जलने लगीं।

शकुनी दत्त ने आवेश में जलते शम्भू को एक और इन्जेक्शन लगाना चाहा— "इसी बिरते पर चले थे कन्धा बचाने। बस देख लिया तुम्हारा साहस। जाओ चूड़ियाँ पहनलो घूँघट काढ़ कर बैठो घर में ऊँहूँ।"

शम्भू का सारा शरीर जलने सा लगा। शकुनी दत्त कमरे में घूमने लगा। अब शम्भू की बारी थी।

"पण्डित जी! मेरे पौरुष को ललकारते हो, चाहते हो मैं अभी इसी समय जाकर उस बालक का बध कर डालूं। दिन धौले वह अपराध करूं जिसका दण्ड सूली पर लटकाये जाने के अतिरिक्त और कुछ नही है। नही यह मुझसे नही होगा। मैं जीना चाहता हूं और जीनेके ही लिए अपराध करता हूं। पौरुष की परीक्षा करनी हो तो किसी बराबरी वाले से अडाओ।"

शकुनी दत्त चोट खाये नाग की भांति फुंकार उठा। कई क्षण तक उसकी ओर देखता रहा। बोला कुछ नही।

तब वह ही बोला—"धनुष की डोर इतनी खीचो कि टूट न जाये।"

राज्य पुरोहित के मस्तिष्क में उस समय एक साथ कितने ही विचार उत्पन्न हुए, वह अपने आसन पर जा बैठा, कुछ देर सोचता रहा और फिर अपने को नियन्त्रित करता हुआ बोला—"शम्भू! मैं तुम्हें कायर तो नही कहता। तुम्हारे साहस और बल का मैं प्रशसक हूं। परन्तु तुम जानते हो, मैं जिस काम को करने का निश्चय कर लेता हूं। करके छोडता हूं। उस समय तक चैन से नही बैठता जब तक सफलता न मिले। जब मैंने होश सम्हाला था तभी से निश्चय किया था कि मुझे राज्य-पुरोहित के पद पर पहुंचना है। इसके लिए मुझे वर्षों प्रयत्न करने पडे, अन्त में एक दिन जैसे तैसे सफलता मिल हीग यी। तुम जानते हो काश्यप की चार पीढियो से राज्य-पुरोहित का पद उनके कुल मे चला आता था, यह पद उनकी जागीर हो गया था। आज जब प० काश्यप मर गया, तभी मेरा स्वप्न साकार हुआ। प० काश्यप का अबोध पुत्र कपिल भले ही आज हमारे सामने न टिक सके परन्तु कभी कपिल युवावस्था को पहुंचेगा। उस समय उसके मन में हमारे वैभव को

देख कर ईर्ष्या होगी बिल्कुल मेरी ही भाँति और जब वह यह सुनेगा कि उसकी विरासत को मैंने छीन लिया है वह उतावला हो जावेगा अपनी पतृक प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए। तब वह क्या नहीं करेगा ? बस उसी की कल्पना करके मेरा रोम-रोम रोमांचित हो जाता है। मैं अपनी स्थिति से निश्चिन्त नहीं हूँ। और जब कभी कौशाम्बी नरेश अथवा अन्य मुझसे 'काश्यप की विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं अथवा कपिल के सम्बन्ध में पूछताछ' करते हैं तब मैं एक आशंका से सिहर उठता हूँ। मुझे लगता है कि काश्यप की आत्मा आज भी अपने पद से चिपटी हुई है तुम्हीं बताओ ऐसी स्थिति में और क्या उपाय है मेरे पास ? जिससे मैं शान्त हो सकूँ। भविष्य के लिए निश्चिन्त हो सकूँ। तुम मेरे हो मुझे तुम पर अभिमान है इसीलिए कहता हूँ।

शकुनी दत्त के इस मार्मिक स्पष्टीकरण से अभ्यु का आक्रोश मिट गया। वह अपनी सामान्य स्थिति में आकर बोला— मैं आपकी बात समझता हूँ। परन्तु बिना बात की चिन्ता आप क्यों करते हैं। कपिल कोकिल रहे और मूर्ख बना रहे इससे भी आपका काम चल ही सकता है। फिर व्यर्थ की हत्या का पाप क्यों कमाया जावे। आज की घटना वह अपनी माँ को सुनाएगा और बहुत सम्भव है कि उसकी माँ अब बहुत सावधान रहा करे। ऐसी स्थिति में अभी तो कुछ दिन चुप्पी साध लेना ही ठीक है। यदि कभी उसने पढ़ने का प्रयत्न किया तो मैं उस समय अपने प्राणों पर खेल कर भी उसकी इच्छा पूर्ण करूँगा।

पर शकुनीदत्त कुछ सोच में पड़ गया। मन और मस्तिष्क में विचारों की आँख मिचौनी-चलती रही। कुछ क्षण उपरान्त उसकी आँखों में चमक उत्पन्न हो गयी बिल्कुल वैसी चमक वैसी उस शिकारी की आँखों में आ जाती है जो अनायास ही बेसुध शिकार को अपने निशाने पर पा जाता है।

हर्षविभोर होकर उसने चुटकी बजायी और हाथ के संकेत से

शम्भू को अपने निकट बुलाया। बहुत धीमी आवाज मे उसने शम्भू मे कुछ कहा और शम्भू पूरी बात सुनकर प्रसन्न चित होकर बोल उठा— 'पण्डित जी ! यह कौन बड़ी बात है। लो आज से ही मैं जुट जाता हूँ इस काम पर।"

कुछ क्षण रुक कर शम्भू ने अपनी दोनो हथेलियो को मलते हुए विनीत भाव मे कहा—'पर लल्लू की माँ बड़ी पगली है। कहती थी पण्डितजी तो राज-पुरोहित होगए। तुम ने उनके लिए हर भला बुरा काम किया है अब क्यो हम किसी बात का कष्ट उठाये। "वह बात यह है पण्डितजी, वह बहुत दिनो मे कुछ आभूषण वस्त्रो की बात कहती आ रही है मैं तो बहुत समझाता हूँ। पर आप राजपुरोहित क्या हुए उसके तो पंख ही लग गए।"

मन मे कुछ घृणा का भाव जाग्रत होने पर भी प० शकुनी दत्त ने हँसने का ही ढोंग किया और कहा—"हाँ हाँ कोई बात नही सब कुछ बनेगा। लो इस समय तो तुम यह रक्खो।"

शम्भू ने मुद्राएँ गिननी चाही, पर पण्डित जी उठ कर अन्त पुर की ओर चले गए, कहते गए—"शम्भू ! तृष्णा और लोभ में फँसने मे कभी-चैन नही मिलता। सन्तोष ही सुख का एक मात्र साधन है। लल्लू की माँ से कहना कुएँ की मिट्टी कुए मे ही लग जाती है। मैं राजपुरोहित हुआ हूँ राजा नही"

अन्त पुर से उनके हँसने की अवाज शम्भू के कान तक पहुँचती रही। उसने अपने ओठ पिचका दिए। कुछ बड़ बड़ाया और मुद्राओ को सम्भाल कर कमरे से बाहर निकल गया।

× × ×

महलो की ओट मे ही झोपड़ियाँ भी होती हैं। वैभव की जड मे दारिद्रय का साम्राज्य होता है। गिरि शिखरो के नीचे गहरी, पाताल

स्पर्शी कन्दराएँ और घाटियाँ विद्यमान होती हैं, गिरि शिखर का महत्व ही कन्दराओं और गहरी घाटियों से है। वे न हों तो फिर शिखर शिखर ही न रहें। इसी प्रकार वैभवपूर्ण और समृद्धिशाली नगरों की कोख में आपको वे कुटीर भी मिलेंगे जिनके तृण पात से निर्मित छप्परों से धुएँ के रूप में उनके स्वामियों की आहें निकला करती हैं। जिनकी मैली कुचैली और जर्जर रत दीवारों से चीत्कार और रुदन की ध्वनियाँ निकल कर वायु मण्डल में विलीन हो जाया करती हैं। परन्तु भाग्य और ईश्वर को अपने दुखों के लिए उत्तरदायी बता कर उन्हें सराहने वाले भी उन्हीं दरिद्रालयों में मिलेंगे। जैसे उन्हें दरिद्रता दे कर उन पर दाता ने बड़ी भारी अनुकम्पा की हो।

कौशाम्बी नगर की समृद्धिशाली एवं वैभव पूर्ण बस्ती में भी उन झोंपड़ों की कमी न थी जहाँ जीवन के नाम पर मृत्यु पनपती थी। जहाँ भूख और उत्पीड़न का पालन पोषण बड़े यत्न से होता था। जहाँ मुस्कान की एक हल्की सी रेखा की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत कर दिए जाते थे और जिनके निवासियों को खून पसीने की कमाई पर सहस्रों कटुनी बात पसते थे।

ऐसे ही एक मुहल्ले में जहाँ निर्धनों का वास था और जो नगर का बहु जनसंख्या वाला भाग था एक छोटा सा मकान था। जिसकी दीवारों का लेप अनेक स्थानों पर से उतर चुका था। बल्कि किसी निर्धन भिखारी के वस्त्रों की सी दशा थी उसकी अन्धेरे में ऐसा लगता मानो फटे हुए वस्त्र पर पेवन्द लगाये गये हों। मकान के द्वार के किवाड़ों पर मिट्टी लीप दी गई थी ताकि धुन के कारण किवाड़ों में हो गए छेदों के मुँह बन्द हो जायें। पूरे मकान में दो कमरे थे। एक सोने और उठने बैठने का और दूसरा रसोई से लेकर भण्डार गृह और लकड़ी घर सभी का काम देता था यूं कह लीजिए कि वह बहुधन्धी घर था। छोटा सा आंगन, जिसके एक कोने में ओखली और मूसल

रक्खा था तो दूसरे कोने मे पानी के घडे लकडी की घडौंची पर रक्खे थे।

बीच आगन में पीढे पर बैठी एक इकेहरी देह की स्त्री गरदन नीची किए कपडा सीने मे व्यस्त थी। नाम था यशा। उसके सामने भूमि पर कई नए और पुराने कपडे पडे थे। इस समय वह एक पुराने वस्त्र में थेगलो (पैबन्द) लगाने मे व्यस्त हैं। कभी-कभी गरदन उठा कर द्वार की ओर देख लेती हैं। उसकी आँखो मे शून्य है। कोई भाव व्यक्त नहीं होता। चेहरे पर सरसो के पुष्प का रग विद्यमान हैं, आँखो के चारों ओर काले घेरे पड गए हैं और नाक मे एक छेद है, जो इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि कभी उसमे स्वर्ण फूल अवश्य रहा होगा। कानों में किए गए छेद, जो अब अपना मुँह भींचते चले जाते हैं, रिक्त हैं। घने काले बाल कमर पर छिटक रहे हैं, माग मे सिन्दूर का चिह्न तक नही। ऐसा लगता हैं मानो यह सूनी माँग सिन्दूर के लिए तडप गई है। बाल रूखे हैं, मुख के दो ओर दाये बायें नाक की जड से लेकर दो रेखाएँ पडी हुई हैं जैसे दो शृङ्खलाएँ पड गई हो। इसके मुँह पर पास वाले कमरे मे जिसके सामने वह बैठी है, सामने खूटियो पर कुछ मैले और पुराने वस्त्र टगे हैं, जिनमे कुछ नारी के और कुछ बालक के है, पर किसी बडे पुरुष का कोई वस्त्र दिखाई नही देता।

वस्त्र सीने मे व्यस्त यशा ने एक बार दीर्घ नि श्वास छोडा और फिर द्वार की ओर देखा। उधर कोई दिखाई नही दिया तो कपडे और सुई धागे को एक ओर रखकर वह उठी और द्वार पर जाकर खडी हो गई। कई बार झुक-झुक कर इधर उधर, दूर तक दृष्टि डाली। वह कुछ उद्विग्न सी हो गई। कुछ देर खडी रही और वापिस आकर अपने काम मे लग गयी।

"माँ, माँ, माँ" द्वार की ओर से चीख सी सुनाई दी। स्त्री में जैसे विद्युत् तरग का सचार हो गया हो। उसके सारे शरीर में हरकत हुई और विद्युत् गति से उसकी दृष्टि द्वार की ओर चली गयी।

एक बालक जिसकी आयु ६ वर्ष से अधिक न होगी और जर्दी मोल मुंह न अधिक मोटा न पतला साधारण शरीर वाला हाँपता काँपता दौड़ता हुआ आया और मया के वक्ष से चिपट गया। वह पसीने में नहा रहा था और उसका सारा शरीर कम्पित था। मया की छाती से लगते ही उसके नेत्रों से अश्रु धार बह निकली। उसने उसे बार-बार पुचकारा और उद्विग्न होकर बार-बार पूछने लगी—"क्या हुआ मेरे लाल को? क्या बात है? कुछ बता तो सही?'

माँ के स्नेह आलिंगन ने उसके रुदन को और भी उत्साहित कर दिया। उसका द्रवित हृदय हगों की राह बह निकला हिचकी बंध गई और अवरुद्ध कण्ठ शब्दोच्चारण की शक्ति खो बैठा।

मया घबरा गई। बारम्बार पुचकारने और ढाढ़स बंधाने के साथ साथ चुम्बनों की झड़ी लगादी उसने। बालक की अश्रु-धार पलकों के कूल पार करती हुई मया के आँचल को गीला करती जाती थी और स्वयं मया की आँखें भी हिरस के मारे बरस पड़ने को आतुर हो रही थी।

सान्त्वना के बोल काम कर गए और अश्रु धार का वेग कम हुआ। मया ने उसकी आँखें पोंछ डालीं और तब बहुत प्यार से पूछा—'कपिल बेटा! क्या हुआ तुझे? क्या किसी ने तुझे कुछ कहा है? मारा है? तनिक बता तो सही मैं उस कलमुँहे का दिमाग ठिकाने लगा दू भी।

जैसे कपिल को यही आश्वासन चाहिए था उसने कहना आरम्भ किया—'माँ उसने मुझे पकड़ लिया और मुझ ले गया।

"कहाँ ले गया तुझे?

एक" एक "बड़े भारी मकान में।

कौन था वह? मया आश्चर्य चकित होती जा रही थी।

रुदन की ओर से ध्यान हटा और अब कपिल घटना का वृत्तान्त सुनाने मे लग गया।

बडी बडी मूँछे, बडी-बडी लाल लाल आखें, बहुत ऊँचा, मोटा आदमी था वह।"—कपिल की गोल आंखो की पलकें पूर्ण वृत्त के रूप मे फैल गयी। अपनी आंखो से वह शम्भू की भयानकता दर्शाना चाहता था। यशा के हृदय की धडकनो की गति तीव्र होती जाती थी। वह अपनी कल्पनाओ म एक भयानक व्यक्ति की आकृति बना लेना चाहती थी।

'फिर क्या हुआ ?"

"पहले अकेला था, फिर दो हो गए और फिर तीन। बडे भारी मकान मे ले जाकर मुझे उसने तीसरे आदमी को दे दिया। उस मकान मे बहुत सारे बालक पकडे हुए बैठे थे।"—कपिल ने यशा के विस्मय और भय मिश्रित भावो को और भी गहरा कर दिया। उसने एक बार कपिल को अपनी छाती से लगा कर भीच लिया, जैसे उसे कोई भयानक आकृति छीन लेने के लिए आ गई हो। कपिल तिलमिलाया। यशा ने उसे छाती से अलग कर उसके मुँह को अपने मुख मण्डल के सामने करके फिर पूछा—'मेरे लाल! फिर तू कैसे बचा ?" उस समय यशा की आंखो मे भय और दुःख दोनो का डेरा था।

"मैं बहुत रोया, चिल्लाया, मैंने कहा मुझे मां मारेगी, मुझे छोड दो। मै फूल लने आया हूँ। मेरी बात सुनी ही नही। फिर वे पिताजी का नाम लेकर बात करने लगे और उस आदमी ने मुझे नीचे उतार दिया। मैं वहा से बडे जोर से भागा, किसी के हाथ नहीं आया।" इतना कह कर कपिल फिर एक बार यशा की छाती से लग गया,—"मां मुझे उस आदमी से बहुत डर लगता है।"

यशा सोच मे डूब गयी। उसके अन्तर मे हलचल मच गयी। कौन थे वे लोग ? कपिल को क्यो पकडते थे ? क्या चाहते थे वे ? यही थे वे प्रश्न जिनका उत्तर वह अपने मस्तिष्क से चाहती थी। अनु-

मान कई ओर को टोकता था उसमें स्थिरता न आ पाती थी। उसकी नजरें शून्य थीं उन में कोई भाव नहीं दोखता था वह देखते हुए भी नहीं देख पा रही थी। मौन तथा स्तब्ध थी वह। सोच रही थी और सोचती ही जाती थी विचारों के गहरे सागर में डूबती उतराती अन्त मे किसी निष्कर्ष पर पहुँच गयी वहाँ पहुँच कर उसे आगे विचार करने की आवश्यकता अनुभव न हुई। और कपिल के दोनों भुजदण्ड अपने हाथों मे थामकर अपने सामने खड़ा कर लिया फिर दृढ़ मुद्रा में उसने कहा — देख कपिल। आज से तू कहीं नहीं जायेगा। इस घर की ड्योढ़ी से बाहर पग रक्खा तो मुझ से बुरा कोई न होगा।

कपिल स्व कारोक्ति मे एक शब्द भी न कह सका। केवल गरदन हिलायी जैसे उसने अपनी माँ का आदेश सुन और समझ लिया हो और आदेश के पालन का आश्वासन भी देना चाहता हो।

यशा ने आज्ञाकारी पुत्र का मुह चूम लिया।

पूजा के लिए फूल मैं स्वयं ले आऊँगी हाँ देखना मेरे पीछे घर से बाहर न निकलना। यशा ने पुन आदेश दिया और फिर गद्गद् स्वर से बोली—बेटे ? जब मुसीबत आती है तो कुएं से पानी खींचने की रस्सी भी सर्प बन जाती है अपने भी पराये हो जाते हैं। आज हम पर भी दिनों का फेर है। भाग्य रूठ गया है। चारों ओर शत्रु ही शत्रु हैं। बहुत सावधान रहना होगा। कभी तो दिन फिरसे ही।

यशा की बात का अर्थ कपिल की समझ मे न आया वह सुनता रहा और मौन रहा न हाँ की और न ना। और यशा कह कर उठ खड़ी हुई कि— 'पर तू क्या समझेगा इन बातों को।

अभी यशा कपड़े ही सम्भाल रही थी कि द्वारपर आवाज लगी— "कपिल की माँ। ठकुरानी ने कपड़े मँगाए हैं, सीं दिए हों तो भिजवावो

'अच्छा अभी आती हूँ। —कहकर यशा ने जल्दी जल्दी कपड़े लपेटे और घर से बाहर निकल गयी।

दो

रजनी कजरारी चूनर ओढ़ कर अवतरित हुई है। उसने अपने गले का रत्न–मणियो का हार विरह सन्ताप में तोड फेंका है, और हार के रत्न गगन के आँचल में बिखर गए हैं असख्य रत्न-मणियो की चमक भी धरा पर फैले घोर तिमिर के आवरण को भेद नही पाती। वातावरण निश्चेष्ट है। चारो ओर सन्नाटा छाया है, हाँ रात्रि की इस घोर निस्तब्धता को कभी-कभी सडको पर स्वनियुक्त निशिपालक की भाँति पडे ऊँघते श्वान किसी भ्रमवश रौद्र-नाद कर उठते हैं। जगल में भ्रमण करते शृगाल एक साथ स्वर मे स्वर मिलाकर चीख उठते हैं और रात्रि की स्तब्धता घायल हो जाती है।

सब लोग निद्रा की गोद में विश्राम कर रहे हैं। पशुशालाओ में बँधे बैलो की पलके मुँदी हैं, पर कभी-कभी मच्छरो के आक्रमण से तग आकर वे कान फटफटाते हैं और तब गले मे बँधी हुई टालें बज उठती हैं। गौएँ जुगाली कर रही हैं और उसी के साथ-साथ नीद का आनन्द भी लेती जाती हैं। श्यामपुर के निरकुश सामन्त शेरसिंह के रग-महल मे नृत्य बन्द हो गया है वाद्ययन्त्रो ने चुप्पी साधली है और सुरा-सुन्दरी की काँच की प्यालियाँ अपने स्थानो पर निश्चेष्ट पडी है। उन प्यालियो मे यद्यपि मदिरा की कुछ बूँदे अभी तक दुर्गन्ध प्रसार कर रही हैं, पर प्यालियो का वह चक्र जो सूर्यास्त होने के तुरन्त बाद आरम्भ हुआ था समाप्त हो चुका है और वे भी अब विश्राम कर रहीं हैं।

उसके शरीर पर भक्तिअनुरागियों की उंगलियों के हलके धूमिल चिह्न अभी तक विद्यमान हैं।

जीवन सुस्ता रहा है, रात्रि की यवनिका में थके शरीर गतिहीन होकर दूसरे दिन के लिए ताजा हो जाने की इच्छा से बेसुध पड़े हैं। पर एक झोंपड़ी में इस समय भी दीपक टिमटिमा रहा है। उसमें से इस समय भी रह-रह कर खांसने और बोलचाल की ध्वनि आ रही है।

इस झोंपड़ी में जिस पर पड़ा छप्पर विधवा के सुहाग की भांति लुट सा गया है, छप्पर कहलाते हुए भी अनेक स्थानों पर आकाश और धरती के बीच का आवरण बनने से इन्कार करता है। घर की एक दीवार भहरा पड़ी है और उसके स्थान पर फूंस की टट्टी लगा दी गई है। १४ गज लम्बे और ९ गज चौड़े इस घर में एक पूरे परिवार ने घर बसा रखा है। तीन खाट पड़ी हैं जिनमें से एक पर एक बूढ़ा बैठा हुआ इस समय भी जब कि अर्द्धरात्रि कभी की बीत चुकी खांस रहा है उसके शरीर की अस्थियां चाम का परदा तोड़ कर बाहर निकल आने को आतुर प्रतीत होती हैं। दूसरी खटिया पर उसकी अर्धांगिनी सहधर्मिणी तथा दुख विभागिनी लेटी है पर उसके नेत्रों में निद्रा का नाम नहीं। तीसरी खाट पर जो बहुत ही छोटी है एक बच्चा लेटी है, जो स्वप्न-निद्रा ले रही है। दीवार में बने ताक में टिमटिमाते चिराग में नीम का तेल जल रहा है। एक कोने में एक टूटी सी खाट जिसे ग्रामीण भाषा में मंझोला कहा जाता है पड़ी है। घर में कुछ बरतन भाण्डों कुछ इधर-उधर पड़े कपड़ों और कृषि उपयोगी खुरपा हंसिया और फावड़ी आदि के अतिरिक्त और कोई ऐसा सामान नहीं है जो उल्लेखनीय हो। यही एक घर है जिसमें इस परिवार की सारी सम्पत्ति निहित है।

एक बार बहुत जोर से आंधी का तूफान आया और इस खाट पर बबूल की भांति झुक गया। उसकी गरदन खाट से नीचे लटक पड़ी,

बुढिया उठी और एक लोटा पानी लायी, गरदन को हाथ का सहारा दिया। लोटा भूमि पर रख कर दूसरे हाथ मे रीढ की हड्डी सहलाई और फिर जब खो, खो की ध्वनि खो गई, तो गरदन ऊपर उठाकर लोटा मुँह के आगे लगा दिया। पसीने मे तर बूढे ने दो घूँट जल पिया और दो उल्टे सीधे स्वास लिए।

"मोहनी की मां! तुम आराम करो, थकी हो। मेरा क्या है? भाग्य मे सोना ही नही लिखा तो फिर सोऊँगा कैसे? तुम मेरे लिए अपनी नींद क्यो खराब करती हो।"

"ऊँह"—बुढिया ने होट बिचका कर घृणासूचक ध्वनि की और अपनी खाट पर जाते-जाते बोली—"मोहनी के बाप! तुम भाग्य की रट लगाये जाया करो कभी सच्ची बात मुँह मे मत निकालियो। यह मुआ शेरसिंह, जब तक जिन्दा है तुम्हें सोना नहीं मिलेगा। तुम इसी तरह खांसते रहोगे। हमारा भाग्य यूँ ही सोता रहेगा। यह धक्के भाग्य के नही शेरसिंह के दिए हुए हैं। इसे खाये हैजा।"

"भागवान्! कितनी बार कहा, मुँह से गाली न निकाला कर। दीवार के भी कान होते हैं।" बूढे ने कहा और फिर खांसने लगा।

"वह हमारा जीना हराम करदे और मैं गाली भी न दूँ?" बूढ़ी की टिमटिमाती आंखे धीमे-धीमे जल उठी।

"किसी का भाग्य अच्छा हो तो शेरसिंह बेचारा क्या कर सकता है। करम गति टारे नही टरे।"

"तो क्यो करे थे पाप? पाप का फल ही भोगना था तो हमारा भाग्य क्यो फोडा? और अब क्यो इस बेचारी कन्या के भाग्य मे आग लगाते हो।" बुढिया गरज कर बोली।

'हां, मोहनी की मां! यह सब मेरा ही पाप है जो फल रहा है पर करूँ क्या मुझे मौत भी तो नही "

'बस बस रहने दो। सबे गाली खाने। उस कममुंहे को तो कुछ कहा नहीं जाता। अपने को गाली देते मुंह नहीं दुखता।' बुढ़िया ने तुनक कर कहा। दीर्घ निःश्वासों के इस श्रीहास्यम कराल में चाहे अपने जीवन से मोह भले ही न हो पर अपनी पति भक्ति को वह भाव भी छोड़ नहीं पायी थी भाव भी यह अपने पति के चिरायु होने की कामना करती थी।

'मृत्यु से इतना क्यों घबराती हो मोहनी की माँ। मृत्यु तो सभी की मंजिल है। मंजिल से तो मोह हुआ करता है।'—बूढ़े में ज्ञान ज्योति का उदय हुआ और वह किसी तत्व ज्ञानी के स्वर में बोला।

कराल काल की सारंगी वह बुढ़ा एक क्षण के लिए अपनी विप दाओं को भूल कर कहने लगी।— 'जन्म पर गीत गाए जाते हैं खुशियाँ मनायी जाती है हमारे घर में ही दो बार बधाइयाँ गायी गयी है पर किसी ने अरथी उठते समय आज तक राग मल्हार नहीं गाए। गाए हों तो तुम्हीं बताओ। जब मोहनी के दादा का देहान्त हुआ था तब फूट-फूट कर क्यों रोये थे बताओ बांटे होते।

'ठीक कहती हो मोहनी की माँ यह दुनियाँ ही उलटी है, जब जीवन के कोल्हू में जुतने के लिए बालक संसार में आता है तो वह रोता है, हंसता नहीं। तुमने तो स्वयं देखा है अपना बबुआ रोया मोहिनी रोयी। रोये थे ना दोनों ?

'हाँ हाँ बात आगे कहो'

तो आने वाला रोता है और देखने वाले हँसते हैं गीत गाते हैं। पर जब जाने वाला सुख की नींद सो जाता है मौन होता है, वह न रोता है न हँसता है। उसे सन्तोष होता है संसार छोड़ने का तो लोग उसे देख कर रोते हैं। है ना दुनियाँ उलटी ?

'मोहनी के पिता। मुझे यह बातें नहीं आती। मैं तो इतना

जानती हूँ कि आज तक कोई ऐसा नही देखा जो मरते समय सन्तोष की स्वांस लेता हो। प्राण बडी पीडा से निकलते है। अपने पिता की बात याद नही रही, कितने तडपे थे ?"

"ससार का मोह ही तो तडफाता है, अन्यथा इस दुख भरे ससार से कौन पीछा छुडाना नही चाहता ? बता हमारे जीवन में क्या सुख • • " वृद्ध ककाल के अन्तर से खांसी का ज्वार आया और बात ज्वार के साथ बह गयी।

वृद्धा ने पुन उसे आकर सम्भाला। वह बडबडाती जाती— "मुई, खांसी ने तो तुम्हारी रग-रग हिलादी। कुछ इलाज हो तो छुटकारा भी मिले। कितनी बार कहा वैद्य से दवा ले आओ, पर जाने कौन भौंकती है ? चिन्ता ही नही।"

ज्वार आता है और किनारो से टकरा कर चला जाता है वही हाल है वृद्ध की खांसी का। आयी और अग प्रत्यग को हिला कर चली गयी। ज्यो ही वृद्ध को खांसी से मुक्ति मिली वह फिर कहने लगा— "इलाज की बात कहती हो मोहनी की मां! रोग से मुक्ति कौन नहीं चाहता, पर गांठ मे कुछ हो तो दवा-दारू भी आये। तुम्ही बताओ कहां से आये दवा के पैसे। वैद्यजी राख की पुडिया की भी रकम मागते हैं। अपना ही घर खाली है तो वैद्य का घर कहां से भरूँ ?"

"मै तो एक बार नही सौ बार कह चुकी, शेरसिह हमारे घर पर नाग बन कर बैठ गया है। सारी कमाई डसे जाता है। इससे पीछा छुडाओ वरना देखना यू ही रोते झीकते मर जाओगे और बालको के हाथ मे फूटा ठीकरा रह जायेगा"—वृद्धा ने हाथ उठा कर उपदेश के स्वर म कहा।

"बात तुम्हारी भी ठीक है।—वृद्ध कहने लगा—अपने परिवार में यही होता चला आया है। दादा को पर दादा से और बाप को दादा से और मुझे अपने बाप से विरसे मे ऋण की गठरी मिली थी। किसने

नहीं कमाया ? बाप तो मेरे सामने कमाता-कमाता मरा है। माव है मा सारे दिन सामन्त की बुवाई कराई थी और शाम को ही आकर ज्वर चढ़ा था तीसरे दिन मरा ही निकला था। और हमने कौन से दिन चैन लिया ? छः वर्ष का था तभी से सामन्त के ढोर डगर चराने भेज दिया था उस दिन से यह दिन है। आज तक कभी फुरसत मिली हो तो कसम ले लो। अपना बछुआ है फूल सा बेटा है, अभी उसकी उमर ही क्या है। बेचारा मैं ग्यारह साल का होगा जो साल से सामन्त की नौकरी बजा रहा है। क्या मजाल जो रात को भी बेचारा भर आ सोये। दिन में ढोर डगरों के पीछे-पीछे मारा मारा फिरता है तो रात को खेत रखाता है। यह भी कोई जीवन है ? तुम कहती हो खेरसिंह से पीछा छुड़ाऊं। कैसे छुड़ाऊं ? जानती तो हो बाप जब मरा था चार बीसी मुद्राएँ थीं ऋण की। सारा जीवन बीत गया उतारते-उतारते और आज ब्याज सहित ९ बीसी हैं। खेत की पैदावार तो हर फसल में तीन चौथाई खेरसिंह ले जाता है और हमें सारा साल उधार ले लेकर खाना पड़ता है। ऋण कैसे उतरे ?

बूढ़ा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और बोली— 'मुझे तो एक नई चिन्ता ने आ घेरा है तुम तो बाप हो मां नहीं मां होते तो चिन्ता होती मोहनी का क्या होगा ?'

'मैं भी दिन छिपे से यही सोच रहा हूँ मोहनी की माँ। बेटा तो दे दिया अब क्या बेटी भी देदूं खेरसिंह को ? तुम नहीं जानती मेरे दिल पर क्या बीत रही है। यदि इनकार करता हूँ तो ऋण चुकाने को कहाँ से लाऊं ?' बूढ़ा ने बलगम थूकते हुए कहा।

'मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ—आर्त स्वर में बूढ़ा बोली —मेरी बेटी को बचाओ। आज तक जो भी लड़की सामन्त की ड्योढ़ी में गयी है कभी भी आबरू के साथ नहीं लौटी देखा नहीं बेचारी कमुआ की बेटी कितनी भली थी आठ वर्ष की थी जब ड्योढ़ी में गई थी और जब

आठ वर्ष बाद वहाँ से निकाली गयी तो पांव भारी थे, डूब मरी बेचारी। मेरा तो कलेजा काप रहा है जब से कारिंदा कह कर गया है कि शेरसिंह हमारी मोहनी को ड्योढ़ी की सेवा के लिए मँगा रहे है।"

"ठीक कहती हो मोहनी की मां। मैं तुम्हारी बात समझता हूँ। बाप हुआ तो क्या है ?—वृद्ध ने गम्भीरता पूर्वक कहा—मोहनी मेरी भी तो सन्तान है अपनी आबरू का मुझे भी तो ध्यान है। निर्धन हूँ तो क्या बात है? हूँ तो क्षत्रिय ही। हम तो अपनी बेटी से अपनी सेवा भी नही कराते फिर हमारी बेटी सामन्त की सेवा करे ? नही, नही, यह मैं न होने दूँगा।"

"कल को सामन्त के पास तुम जाना, साफ कह देना कि और चाहे कुछ करालो हम अपनी बेटी को किसी के घर सेवा के लिए न भेजेगे।"

'हाँ, मैं साफ कह दूगा।"

"घबराराना मत, वह पैसा ही तो लेगा, जान थोडे ही।"

"तुम निश्चित रहो, मैं सब बात साफ-साफ कह डालूँगा।"

"और यह भी कह देना कि हमारे दो बालको में से एक तो तुम्हारे पास है ही, इस पर भी सन्तोष नही ?"

"यह तो कहूँगा ही।"

"मुद्राओ की धौस दे तो कहना :कि मुद्रा लेकर हम कहीं भागे नही जा रहे ?-'

''यह तो सोलहो आने सही है क्या उसे नही दीखता ?"

' कहना कि हम भी ठाकुर है हमारी भी आन है।"

"यह तो वह भी जानता है।"

यह भी कहियो कि कन्या किसी की धरोहर होती है वह _"

'हाँ हाँ कह तो दिया सब कुछ कह चुका। मुझे क्या मूर्ख समझ रक्खा है? चली है तोता रटाने। —बूढ़े का कर्कश स्वर गूंज उठा। एक बार तो बुढ़िया सुनकर सहम गयी और फिर ताना मारते हुए बोली— 'बुद्धि होती तो भले ही दिन न थे। तुम तो बछिया के बाबा बैल हो बस। शेरसिंह जाने कैसे सुनाएँ बताने जाता है पर तुम से आज तक न कभी हिसाब करना आया और न कुछ कहा सुना ही। औरत जात हूँ शेरसिंह के सामने मुझे बोलना नहीं है वरना मैं बताती उस कलमुहे को। बड़ा आया हमारी बेटी से बर्तनों में सेवा कराने वाला।

और शेरसिंह को खरी-खरी गालियां सुनाते सुनाते उसने अपनी फटी चादर ओढ़ली। बूढ़ा मन ही मन पत्नी पर क्रुद्ध होता रहा।

× × ×

खाँसी का असहाय शिकार, मोहनी का बाप जो घर में मोहनी का बाप और बाहर दुनियां की नजर में कमल फुलवा का चार खेतों का किसान था। वर्तमान युग की नाप के अनुसार वे चारों खेत आठ बीघा से अधिक न होंगे। फुलवा जिसको उसका बाप फूलसिंह बताना चाहता था जीवन भर इन खेतों को स्वामी की भाँति जोतता बोता रहा था पर वास्तव में खेत चार पुश्तों से उसके परिवार के हल के नीचे रहने पर भी उसके नहीं थे। उसे खेत के उत्पादन का आधा भाग भूमि-कर के रूप में सामन्त को देना पड़ता था क्योंकि फुलवा के जोतने बोने और अपने रक्त पसीने से उसे सींचने के बावजूद भूमि का स्वामित्व वैधानिक रूप से सामन्त का ही था। और चूं कि विधान ने सदा से ही सामान्तों और धनिकों के स्वार्थों की रक्षा की है यूं कहिए की शासक वर्ग ने अपने हित के लिए ही विधान बनाये और बिगाड़े हैं अतः प्रत्येक प्रकार से शासितों को उसका आदर सम्मान करने की शिक्षा भी बड़ी चतुरता से दी है। कमाने वाला वर्ग नैतिकता और वैधानिकता का पुजारी बनाया गया है, अतः यह न जानते हुए भी कि विधान और सामन्त

वादी नैतिकता किस के हित में है, शासित पीडित होने पर भी उसका आदर करते चले आये हैं, और रीति की लकीरो को अटूट शृङ्खलाएँ मानकर उन्होने अपने अधिकारो की मर्यादा और न्याय के नाम पर शोषको के पजे मे जकडा छोड दिया है। एक युग तक यही होता चला आया है। फुलवा ने कभी इस बात पर ध्यान नही दिया कि वह नैतिकता ईमानदारी और विधान जो उसके अधिकार से उसे ही वञ्चित करते हैं उसे क्यो मान्य हैं ? यह तो नही कहा जा सकता पर यह बात सच है कि कई बार उसने सोचा कि भूमि के उत्पादन का अधिक भाग उसे जिसने अपना रक्त भूमि की कोख मे डालकर उस से अनाज लिया है, मिला करे तो वह सुखी हो सकता है। किन्तु पूर्वजो से सुनता आया है कि भूमि भी भाग्य के अनुसार ही मिलती है अत भाग्य और भगवान् के रहस्यो को जानने की मानव-बुद्धि में शक्ति न होने के अपने भ्रम के कारण उसने अपने विचार को मन ही मे दफना दिया।

भोर हुई और खाँसते-खँकारते फुलवा ने अपनी खटिया से विदा ली। बैलो को चारा डाला और मूँज लेकर रस्सी बँटना आरम्भ कर दिया।

मोहनी अधेरे से ही चक्की पीस रही थी, उसकी माँ ने भोर होते ही चर्खा सम्भाल लिया था।

फुलवा ने आवाज लगाई—"सुनती हो ! अब तुम जाकर मेरे लिए पीस लो, मा बेटी के लिए तो काफी पिस चुका।"

फुलवा की बात समाप्त भी हो गई, पर बात मोहनी की माँ के पल्ले न पडी। उसने कहा—"क्या कह रहे हो ?"

"कह रहा हूँ तुम्हारा सिर।" क्रुद्ध फुलवा ने रौद्र स्वर में कहा। "अरी मोहनी ! रुक तो सही, तेरे पिता कुछ कह रहे हैं।"

मोहनी ने माँ की ओर से आती आवाज सुनकर चक्की रोकदी और पूछा—"क्या कह रही हो माँ ?"

कि मैं मोहनी को साथ लेकर ड्योढी पर पहुँच जाऊँ, पर कही मैं अपनी बेटी को उसके द्वार पर ले जा सकता हूँ। मैं स्वय कहे आता हूँ।"

हाँ, तुम जा कर साफ साफ बात कह देना। मोहनी एक से लाख तक नही जायेगी।"

"सोचता हूँ कह दूँ कि मोहनी बीमार है, कुछ दिनो को बात टल जायेगी।"—फुलवा बोला।

"लो अभी घर से चले नही और पहले ही ढीले पड गये। तुम जरूर मेरी बेटी की लाज लुटाओगे।"—वह बोली।

"चुप रह मूर्ख! बेटी के सामने ऐसी जबान चलाते लाज नही आती।" फुलवा गरज पडा।

"मुझ पर ही गरजना आता है, शेरसिंह के सामने तो तुम्हारे मुँह से बोल भी नही निकलेगा। हाँ मैं जानती हूँ।" बिगड कर मोहनी की माँ ने कहा। उसके हृदय मे शेरसिंह के प्रति क्रोध की ज्वाला धधक रही थी।

छोटी-छोटी ईटो से बने विशाल भवन का ऊँचा चबूतरा उसके स्वामी सामन्त शेरसिंह के बडप्पन का ही प्रमाण था। भवन के सिंह द्वार के निकट मे दायी ओर बैठक थी, जिसमे शेरसिंह का दरबार लगता था। प्रात से सूर्यास्त तक यहाँ लोगो की भीड लगी रहती। यह बैठक न्यायालय भी था और व्यवस्थालय भी। कितने ही ग्राम-वासियो को यही पर दण्ड मिलते थे और कितने ही यहाँ से दुर्भाग्य की प्रलयात्मक मार सह कर जाते थे और ऋण की शृङ्खला में आबद्ध होकर पीढी दर पीढी तक दास रूप मे जीवन व्यतीत करने का पट्टा भी यही पर लिखा जाता था। यह बैठक ग्राम-वासियो के भाग्य का निर्णय-स्थल था। भगवान् के दरबार में मानव के भाग्य का लेखा लिखा जाता हो अथवा नही परन्तु लोगो ने यहाँ ठाकुर शेरसिंह के सकेत पर ग्रामीणो के भाग्य का लेख लिखाते अवश्य ही देखा है।

ठाकुर शेरसिंह ऊंचे आसन पर विराजमान हैं' एक व्यक्ति सिरहाने खड़ा पंखा झल रहा है, उसके हाथ का बड़ा भारी पंखा एक बार इधर से उधर होने पर पवन का भारी झोंका लेकर आता और फिर घूम कर उसी झोंके को वापिस लौटा लाता। पंखे के सामने मानो पवन देवता भी भय के मारे नाचता हो। ठाकुर साहब के पैरों पर एक दास तेल मल रहा है। एक सेवक बैठक के एक कोने में बैठा बादाम घोट रहा है और एक हिसाब-किताब की बहियाँ उलट-पलट रहा है। दो भय नंगे किसान सामने हाथ जोड़े ठाकुर साहब के किसी आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हैं।

'अबे फुलवा! छोकरी कहाँ है?' —सामने आये वृद्ध फुलवा को देखकर ठाकुर चिल्ला उठा।

फुलवा हाथ बाँधे खड़ा था कड़कती आवाज को सुनकर वह सहम गया।

'सुना नहीं—ठाकुर फिर गरजा—मैं पूछता हूँ कहाँ है तेरी लड़की।

अन्नदाता! मैं मैं'''वह' काँपते हुए फुलवा के कण्ठ से बात न निकली।

क्या मैं'''मैं लगा रक्खी है। ड्योढ़ी में काम करने के लिए तेरी लड़की बुलाई थी। कहाँ है वह। —ठाकुर की भृकुटी तनी थी। बोल-बोल में अभिमान और प्रभुत्व हिलोरें ले रहा था।

फुलवा के हाथ काँप रहे थे बड़ी कठिनाई से उन्हें जोड़ पा रहा था। मुंह से बोल न फूटता था। उसी समय माहुली की माँ का स्वर उसके कान में गूंजा— 'मुझ पर ही गरजना आता है शेरसिंह के सामने तो मुंह से बोल भी न निकलेगा।"

ठाकुर मौन फुलवा के काँपते हाथों की ओर देख रहा था। मांगते व्यक्ति को देखकर जैसे बानर की बन आती है उसने फिर

घुडकी भरी—"फुलवा। वोलता क्यो नही। मुझे क्रोध मत दिला, मैं तेरी खाल खीच लूँगा। जा दूर हो मेरी आँखो से। मैं तुझे नही तेरी लडकी चाहता हूँ।"

फुलवा की देह मे जैसे एक साथ सैकडो बिच्छुओ ने डक मारा। वह बहुत तिलमिलाया और समस्त साहस बटोर कर बोला—"ठाकुर साहब। मैं भी जात से ठाकुर ही हूँ। अपनी कन्या को . .."

"वाह री तेरी ठकुरायत—चिढकर ठाकुर गरज उठा—घर मे नही दाने अम्मा चनी भुनाने। रात दिन वैलो की खाद खोदता है दाने-दाने के लिए ड्योढी पर हाथ पसारता है। कन लडकी के दाम उठा येगा, और आज बनने चला है ठाकुर। इतनो ही आन है तो निकाल क दे हमारा सारा ऋण व्याज सहित। खायेगे ड्योढी का और ड्योढी काम पडे तो आँख दिखायेगे। फिर बहियो के पन्नो पर आँख गढाए ठे व्यक्ति की ओर नजर घुमाकर कहा—"मुशी जी देखना कितना नकलता है फुलवा की ओर।"

फुलवा को तो जैसे साप सूँघ गया। वह मौन रहा और कुछ देखते हुए भी अन्धा बना रहा। उसका सिर चकरा रहा था।

मुशीजी ने बही टटोली, पन्ने उलटे और बहुत छान-बीन के बाद बोले—"सरकार १२० मुद्रा, और उनका व्याज ३० मुद्रा, १ मन मक्का, २ पसेरी धान, ४ पसेरी चना और १ पसेरी कपास। इन सब का ड्योढा यह है। फुलवा का हिसाब।"

ठीक है। मुझे इसी समय यह सारा हिसाब साफ करना होगा। रख अपनी लडकी अपने घर मे। देखना हवा न लग जाये। राजकुमारी है न, रग मैला न पड जाये। सम्हाल अपनी ठकुरायत। ठाकुर शेरसिह खोज कर कह रहा था, उसके चेहरे से आक्रोश टपक रहा था।

फुलवा फिर भी मौन था।

ठाकुर भभक उठा—मने सुना नहीं। मुझे इसी समय यह सब धन अनाज कपास सब कुछ चाहिए । और आज से खेतों की ओर आँख मत उठाइयो। समझे, तूने ठाकुर की कृपा देखी है अब उसका क्रोध भी देख।

फुरबा का अग अग काँप रहा था ठाकुर का अन्तिम आदेश सुनकर उसके पैरों तले की धरती निकलती प्रतीत हुई। उसकी आँखों के आगे सर्वनाश की विभीषिका नृत्य कर गयी ।

"खाने-खाने के लिए मोहताज फिरेगा भीख माँगने निकलेगा तो इस बस्ती म तेरे हाथ पर कोई धेलिया भी नहीं। तब तेरी ठकुरायत निकलेगी। दाँत पीसते हुए ठाकुर बड़बड़ाया।

फुनबा की आँखें भर आयीं काँपते हुए किसी प्रकार बोला—अन्नदाता दया करो कृपा करो। मैं तो आपका दास हूँ।

'अभी रही तेरी दासता!—ठाकुर ने पुनः क्रुद्ध होकर बोला—'थोड़ा सा काम पड़ा तो ठकुरायत या समझी। नहीं नहीं हमें इसी समय अपना भाग चाहिए—सुनी थी। फुनबा के खेत इस को———क्या नाम है तेरा हाँ कलुआ कलुआ ही को दे दो।

अन्नदाता—— अन्नदाता आर्त नाद करते हुए फुरबा ने कहा—मुझे बरबाद न करो ठाकुर साहब! मैं आप का हूँ इच्छा——

उसकी आँखों से अश्रु धारा बह निकली। ठाकुर की आँखों में विजय उन्मादता झलकने लगी और अपनी पकी हुई बेलों के सींगों की भाँति बड़ी मूँछों पर एक बार ताव दे कर वह बोला—'फुनबा! हम तुझे बरबाद तो नहीं करना चाहते।"—स्वर को कुछ और नर्म करते हुए कहा—तेरे पुरखे हमीं ड्योढ़ी में रहे। कभी किसी को कोई दुःख नहीं होने दिया। आज यदि तेरी बेटी यहाँ आ कर कुछ काम कर मा दिया करेगी तो कौन सी नाक कट जायगी। यह घर कोई पराया तो नहीं है। 'हाँ मालिक आप ठीक कहते हैं।" बड़े म धुर्या का कुछ

की बांह से पोछते हुए फुनवा बोला। उसका स्वर अभी भी भारी था। मन मे उठती पीडा का तूफान बाहर न उबल पडे इसके लिए वह पूरी तरह प्रयत्नशील था।

पास खडे किसानो ने बिना मांगे परामर्श देते हुए कहा –"ठाकुर साहब, कौन बुरी बात कह रहे हैं। बेटी ड्योढी में काम करेगी तो अच्छा खायेगी, खुश रहेगी, घर का एक पेट कम होगा।"

"ठीक कहते हो कलुवा। —फुलवा बोल पडा —पेट कम करने की ही तो बात ठहरी जंमे हो कम हो तो अच्छा।"

और उसने अपना निचला ओठ दांतो तले दबा लिया। ऊपर का ओठ फडक रहा था। नाक से पानी वह रहा था।

× × ×

"तो तुम बेटी को गिरवी रख आये।'

"भाग्य मे जो लिखा है वह ही तो होता है। मोहनी की मां।"

"भाग्य को क्यो दोप देते हो जी। भाग्य ने कब कहा बेटी बेच डालो।"

"बेचता कौन है। दो चार दिन का काम है, यहां भी कुछ करती ठाकुर का काम कर देगी तो कौन आब उतर जायेगी।

वाह जी बडे आये शेरसिंह के टहलुवे। बस ड्योढी क्या गये जी ही बदल लाए।"

अब फुलवा मे न रहा गया। आंखो मे आंसू भर कर बोला— "मुझे और न सताओ मोहनी की मां। भगवान मे विनती करो मुझे मौत आ जाये।"

"अजी मरे तुम्हारे शत्रु, मरे मुआ शेरसिह।'—फुनवा की पत्नी ने आवेश मे आकर कहा—मै कहती हूं मोहनी का गला घोट दो।

विवशता के कोडे की मार से तिलमिलाया फुलवा खड़ा न रह

सका। मुंह फेर कर आँखें पोंछनी और धड़ाम से खटिया पर गिर पड़ा। खटिया चीत्कार कर उठी। और फिर खाँसी का भयंकर ज्वार आया। परवल खाट की पाटी के नीचे लटक गयी। मोहनी दौड़ी पानी लेकर और उसकी माँ फुगवा की कमर सहलाने लगी। बहुत देर तक माँ बेटी फुगवा को स्वस्थ करने में लगी रहीं और जब खाँसी के पंजे से फुगवा को छुट्टी मिली उसने मोहनी की ओर जलती आँखों से देखा।

'मोहनी! तू ही है सारे उत्पात की जड़। तू ही है मेरी जान की शत्रु। तू न होती तो आज इस तरह डयोढ़ी में मुझे भली कटी न सुनने को मिलती। जी चाहता है तेरा गला घोंट दूं। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।' —फुगवा ने दाँत पीस कर कहा।

मोहनी सहम गयी।

'बेटी पर क्रोध झाड़ते हो। लज्जा नहीं आती? मोहनी की माँ तमक कर बोली—इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। इसको तुम देख रहे हो देख।

फुगवा की कनपटियाँ जलने लगीं। आग्नेय नेत्रों से उसने अपनी पत्नी की ओर देखा।

तुम पर क्यों बिगड़ते हो?—वह बोली—अब भी समय है अपनी इज्जत बचानी है तो जल्दी इसके हाथ पीले कर दो। जिसकी बनेगी वह चाहे इसे मारे या जिलाए। पाप तुम्हारे सिर तो नहीं पड़ेगा। रात-दिन की यह दाँत पिसाई तो मिटेगी।'

फुगवा का क्रोध अनायास ही गुम हो गया। वह कुछ सोच में पड़ गया। और जब उसने परवल उठायी तो उसके चेहरे पर सन्तोष के चिह्न थे।

मोहनी की माँ मोहनी मेरे सब करदो। मैं इसे आज तो दमाद्या पर छोड़ आता हूँ और आज ही इसके विवाह की लग कर

दूँगा। चाहे मुझे बैल ही क्यो न बेच देने पड़े, मै अब बिना मोहनी को विदा किए चैन से न बैठूँगा। देखता हूँ ठाकुर फिर कैसे मेरी इज्जत को आग लगाता है।"

फुलवा की बात सुनकर पत्नी को बड़ा हर्ष हुआ। उसने कहा—"अब कही ढङ्ग की बात। लो आज तो भेज दो पर याद रखना अधिक दिन में इसे भेडिये की मांद मे न रहने दूँगी।"

फुलवा खाट से उठना ही चाहता था कि उसे एक बात और खटकी। वह सोचने लगा—"क्या इतनी कम आयु मे बेटी का विवाह रचाना उचित रहेगा ? लोग क्या कहेगे ?"

"मोहनी! चल बेटी कल जो कपडे धोए थे, वे पहिनले और हाँ देखना ड्योढी में जाकर समझदारी से काम करना। अधिक बोलना, हँसना या काम से जी चुराना, यह सब बुरी बातें हैं। अपने माँ बाप की आबरू का ध्यान रखना।" मोहनी की माँ ने ऐसी ही अनेक बातो को समझाया।

मोहनी जो रुआँसी हो रही थी, माँ के आदेश का पालन करने के लिए धुले कपडे ढूँढने लगी। तभी उसकी माँ की दृष्टि विचार-मग्न फुलवा पर पडी। हथेली पर ठोडी रखे हुए वह चिन्तन-सागर मे डुबकी लगा रहा था।

"क्या हुआ जी! अब किस सोच मे पड गए ?"

"सोच रहा था मोहनी तो अभी बहुत छोटी है। अभी आठ नौ वर्ष की ही तो होगी। इतनी कम आयु मे विवाह करना क्या अच्छा रहेगा? दुनिया क्या कहेगी ?"

'तुम्हे तो कुछ बात चाहिए, बस मीन मेख निकालना आरम्भ कर देते हो। जब जवान बेटी शेरसिंह की ड्योढी मे काम करेगी तो लोग क्या कहेगे ? यह भी सोचा है ? आज लडकी जा रही है जानते हो यूँ ही शेरसिंह उसे घर न बैठने देगा। उसका बस चले तो वह सारा

जीवन काम करायें। इससे पहले कि बेटी जवान हो और शेरसिंह हमारी भाबक का गाहक बने बेटी को वहां से काम पर से छुड़ाना ही होगा और विवाह के अतिरिक्त और चारा ही क्या है ?' —मोहनी की माँ ने समझाते हुए कहा।

'कहती तुम ठीक ही हो। परन्तु विवाह को दो तीन वर्ष लग जायें तो भी कोई बात नहीं।

मोहनी की माँ की त्योरियाँ चढ़ गयीं माथे में बल पड़ गए। उसने तमक कर कहा— बस बस मैं समझ गयी! तुम तो मुंह को मलिच्छ-समझाओगे।

मन्नू पत्नी को शान्त करने के लिए उसने कहा—"अच्छा तो वही तुम्हारी मरजी भागवान्! मोहनी को अब भी भेजो मेरे साथ। वह मेकिया बन रहा होगा।

तीन

यशा चरखा चला रही थी, कपिल एक कोने मे बैठा मिट्टी से खेल रहा था। द्वार पर कुण्डी खटखटाने की ध्वनि हुई और यशा हाथ की पोनी रख, धोती सिर पर ठीक करती हुई द्वार पर गयी, बिना द्वार खोले ही उसने पछा—"कौन ?"

"द्वार खोलो।"

आवाज आई, किसी पुरुष की आवाज सुनकर यशा कुछ हिचकी साहस करके पूछा—"आप कौन है ? किसे पूछते हैं ?"

"पण्डित काश्यप जी का मकान यही है न ?"

"जी यही है।" धीमे स्वर मे यशा ने कहा। पुरुष की आवाज उसके पहचानने मे नही आयी। कोई अजनबी था।

"द्वार खोलिये। मुझे कुछ बाते करनी है।"

पहले तो यशा कुछ सोच मे पड गयी, फिर साहस कर द्वार खोल दिया और स्वय एक किनारे होकर खडी हो गयी।

भाभी जी "प्रणाम"

पुरुष ने आते ही दोनो हाथ जोड दिए।

अनायास 'भाभी' का सम्बोधन किसी अजनबी के मुख से सुन कर यशा आश्चर्य चकित हो गयी, कुछ असमजस मे रह गयी। उत्तर मे हाथ तो जोड दिए पर मुँह मे कोई शब्द नही निकला। आगन्तुक ने

किंचित हँस कर कहा—"श्रोह ! समझा ! आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं हूँ पुरुषोत्तम।"

यशा ने अपने मस्तिष्क पर जोर डाला। स्मृति के भण्डार में, मस्तिष्क ने खोज बीन की पर कहीं से इस प्रकार के नाम और इस आकृति का कोई स्मृति-चिह्न न मिला। निराश होकर यशा ने अपनी धोती का पल्ला कुछ आगे ललाट पर करके कहा—मैंने आपको अभी भी नहीं पहचाना।

अच्छा अभी भी आप नहीं पहचानीं? तो बसिए मैं आपको याद दिलाता हूँ।

कमरे में आकर नवागन्तुक हृष्ट-पुष्ट लम्बा डीलडौल का व्यक्ति था। उसकी चौड़ी छाती आँखें आम की फाँकों सी बड़ी-बड़ी तथा लम्बी नाक तोते की चोंच जैसी कटार जैसी मूछें और ठुड्डी तनिक उभरी हुई। ये सब अंग मिलकर एक ऐसे व्यक्ति की सृष्टि करते थे जिसे देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी अखाड़े का पहलवान होगा। यशा ने कनखियों से उसका ऊपर से नीचे तक का निरीक्षण किया। एक बार तो उसके हृदय में भय की लहर दौड़ गयी वह सहम गयी। जानना चाहती थी कि यह कौन है और यहाँ क्यों आया है? उसके भयोत्पादक व्यक्तित्व के प्रभाव से ओठों में हरकत हुई किन्तु ध्वनि न निकली। आगन्तुक ने एक बार सारे कमरे पर उड़ती हुई दृष्टि डाली और फिर बोला—'ओह! भाभी तुम तो अभी तक खड़ी हो हा बैठ जाओ।"

"नहीं आप बैठे रहिए।

'तो आप अभी तक मुझे न पहचान पायीं।

बहुत ही धीमे से यशा की गरदन हिली।

मेरा नाम पुरुषोत्तम है यह तो आपने जान ही लिया। मैं इसी नगर के दक्षिणी छोर पर रहता हूँ। स्वर्गीय भाई साहब व काश्यपजी

की मुझ पर विशेष अनुकम्पा थी। उन्ही कृपा से मुझे पाटलिपुत्र मे एक नौकरी मिली। आपको याद नही रहा, कई बार मैं आपके मकान पर आ चुका हूँ। अब तो आपने मकान बदल लिया, उस बडे मकान मे जिसमे आप लोग पहले रहते थे मैं अनेक बार आया हूँ। हाँ प्राय बाहर ही पण्डित जी से वार्ता करके लौट जाया करता था, एक दो बार मैने आपको देखा है, पर अब आपको याद कहाँ रहा होगा। इतना बडा शोक का तूफान आया है, उसके बाद आदमी की बुद्धि काम थोडे ही दिया करती है। और बेचारे पण्डित जी! जब याद करता हूँ आँखो मे आँसू"

उसने जेब से रूमाल निकाल कर आँखे पोछने का बहाना किया। "भाभी! मैं उस समय बाहर था, जब से यहाँ आया हूँ आपकी खोज मे लगा रहा, तब कही आपका पता लगा है। ऐसे समय आपको सहायता की आवश्यकता होगी। पण्डितजी ने जो अहसान किए हैं उनसे उऋण होने का समय आ गया है अब आप मेरे योग्य कोई सेवा बताइए।"

यशा की आँखे सजल हो गयी थी, उसने मुँह छुपा कर आँखे पोछी और पीढा लेकर बैठ गयी। उसे अपने शकालु मन पर बडा क्रोध आया कि ऐसे व्यक्ति पर जो उसकी सहायता के लिए आया है व्यर्थ की शका कर रहा था।

"तुम्हारी बडी दया है जो इतना कष्ट किया। मेरा अब कौन रहा है इस जगत् मे। जब से कपिल के पिताजी स्वर्ग सिधारे हैं अपने भी पराए हो गए है।"—यशा कहने लगी।

"अन्धेरे मे तो अपनी परछायी भी साथ छोड जाती हैं। यह तो ठीक है। पर भाभी ससार मे सब एक से नही होते। सकट के समय मे ही तो अपने पराये की पहचान होती है।"—नवागन्तुक जो अपना नाम पुरुषोत्तम बताता है मार्मिक लहजे म बोला।

यशा उसके शब्दो से बहुत प्रभावित हुई, ऐसे समय जब चारो

घोर सकट के बादल छाए हों सहानुभूति के बोल बड़े प्यारे लगते हैं। तनिक सा स्नेह सूचक व्यवहार विश्वास को जन्म दे देता है। इसीलिए यशा ने नवागन्तुक को अपना जान कर कहा— अच्छा पहले मैं आपके लिए कुछ लाऊं।

नहीं भाभी! तुम बैठी रहो। कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं बहुत कुछ खा पीकर घर से निकला हूँ।

किन्तु यशा को सन्तोष न हुआ। उसने कपिल को पुकारा। कपिल उस समय दूसरे कमरे में बाकर कागज की चिड़िया बनाने में लगा हुआ था। अपने खेल मे मसगन कपिल माँ की पुकार सुनकर दौड़ा हुआ आया पर कमरे में प्रवेश करते ही वह सहम गया और भयातुर दृष्टि से नवागन्तुक को देखता रहा।

'देख बेटे यह तेरे चाचा हैं इन्हें प्रणाम करो।' यशा बोली।

'वह भयभीत था, उसके पैर पृथ्वी पर थम से गए थे। प्रणाम करना तो दूर रहा उसका आगे बढ़ने को साहस नहीं हो रहा था।

अरे मुँह क्या देखता है प्रणाम करले चाचाजी को।" यशा ने फिर कहा। कपिल दौड़कर उस की छाती से चिपट गया और बड़ी कठिनाई से बोला— 'माँ! यह तो नहीं ... ...

अरे पगले तू डर गया है इससे यह तो तेरे चाचाजी हैं।"

कपिल की बात बीच में ही रह गयी।

यशा बोली— 'बेटे! जा बड़े में से गुड़ और चने ले आ।

कपिल और बुरी तरह चिपट गया।

'बड़ा हठी है मानता नहीं। झिड़क कर यशा ने कहा।

और बल पूर्वक उसे अपने से अलग करके दूसरे कमरे की ओर भेज दिया— 'जल्दी से ला गुड़ और चने।

अब कैसे पुकारती है?' – उसने पूछा।

"बस किसी तरह काम चल रहा है । कपिल के पिताजी के देहान्त के दो दिन पश्चात ही रात्रि को चोरी हो गयी । सारा सामान, घर का एक-एक आभूषण, नकदी, वस्त्र और बरतन तक चले गए । पता नही कब का ऋण था शकुनी दत्त का, उसने ऋण के बदले मे मकान ले लिया । यह छोटा सा घर था कभी पूर्वजो ने बनवाया, था अब तक इस मे एक और व्यक्ति रहता था, उससे खाली करा कर यहां रहने लगी । सिलाई, कताई और पीसने आदि का काम करके पेट पाल रही हूं ।" यशा अपनी दुख पूर्ण गाथा कहते हुए बोली ।

यशा की गरदन नीची थी, आगुन्तुक ने सिर घुमाया और फिर मुंह सामने करके रुमाल हाथ मे लेकर आंसू पोछने का बहाना किया । —ओहो कितनी हृदय विदारक कथा है आपकी । हा, शोक अब तक मैं नगर मे बाहर था अन्यथा मैं आपको इस प्रकार दुखित न होने देता ।"

यशा को गुड चने का ध्यान आगया । उसने कपिल को पुकारा । पर जब कपिल का कोई उत्तर नही मिला, वह स्वयम् उठकर गयी । जा कर थाली मे गुड चना निकालने लगी, तभी उसकी दृष्टि कपिल पर गयी । देखा वह बहुत घबराया हुआ सा एक कोने मे खडा है । जी में आया कि एक चांटा रसीद करदे पर अतिथि के सामने बालक को पीटना उचित न समझ कर वह हाथ रोक गई, फिर भी आग्नेय नेत्रो मे उसकी ओर देखते हुए उसने आंखो द्वारा ही घुडकना चाहा । कपिल की आंखो से आंसू बह निकले । क्रुद्ध यशा ने कहा—"रोता क्यो है ?"

"मां यह तो वही है जिसने मुझे पकडा था ।"

यशा के हाथ से थाली छूट गयी । थाली के गिरने की आवज से सारा कमरा गूंज उठा ।

यशा उसके निकट गयी—"बेटे यह तो यहां रहते ही नही है, जरूर तुझ से भूल हुई है वह कोई और होगा ।"

यही था मौ बिल्कुल ऐसा ही आदमी था गम्भीर होकर कपिस ने कहा।

यशा सोच मे पड़ गयी। फिर कुछ निश्चय करके दूध बने माली मे रखकर वह कमरे में गयी और आगन्तुक के सामने रखकर एक बार पुन: उसने ऊपर से नीचे तक उसका अवलोकन किया।

आगन्तुक जैसे परख गया हो बोला—"भाभी! बहुत घूर-घूर कर देख रही हो। क्या बात है?"

'नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं है। कपिस आपको देखकर डर गया है।

'बच्चे प्राय: मुझे देखकर भयभीत हो जाते है। बचपन में व्यायाम का शौक था। क्या बताऊँ कुछ शरीर ही ऐसा।—आगन्तुक ने बालक के भय का कारण बताने की चेष्टा की।

एक दिन उसे किसी ने पकड़ लिया था। —यशा ने कहा।

एक बार तो आगन्तुक का मुख पीला पड़ गया पर तुरन्त ही अपने को सन्तुलित करके विस्मय प्रगट करते हुए बोला— 'भाभी! मेरी बात मानों कपिस को सम्भाल कर रक्खा करो। मुझे लोगों ने बताया है कि नया राज-पुरोहित आप के बहुत पीछे पड़ा हुआ है। कपिस उसे फूटी आँखों न सुहाता होगा।

यसे यशा का प्रश्न समाधान हो गया हो सकोच त्यागकर बोली— 'क्या बताऊ यह पगला डर के मारे कहीं दुबका बैठा है यहां आता ही नहीं। यह कहता है आपके स्वरग का ही था वह व्यक्ति जिसने उसे पकड़ा था।

आगन्तुक अट्टहास कर उठा— तो यह बात जो तभी आप घूर घूर कर देख रही थी।—कहां है यह बुलाओ तो सही। मुझे यहाँ तीन ही दिन तो हुए है। और उसे पकड़ा किस दिन था?'

"यह तो कई दिनो की बात हो गयी।

यशा ने बहुत बुलाया पर कपिल उस कमरे मे न गया।

पुरुषोत्तम और यशा बहुत देर तक आगन में वार्तालाप करते रहे। और अपनी बातो के द्वारा उसने यशा को विश्वास दिला दिया कि वह वास्तव मे उसकी सहायता करना चाहता है। बार-बार इस प्रस्ताव को करके उसने यशा के हृदय मे अपने प्रति स्नेह का भाव उत्पन्न कर दिया। यह देख पुरुषोत्तम विजयोल्लास मे खिल उठा।

साथ मे लाए वस्त्रो की एक पोटली, उसने यशा के सामने रखते हुए अन्त मे कहा—"लो भाभी! आप मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार करे और जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह बतादे, कल लेता लाऊँगा।"

"मै आप से कोई वस्तु न लूँगी।—यशा ने कपडो की पोटली उठा कर उसके पास रखते हुए कहा—मेरे पास बहुत कपडे हैं।"

"नही यह तो आप को रखने ही होगे।"—उसने आग्रह किया।

"आप बुरा न माने। अपने वस्त्र अपने साथ लेते जाएँ। देखिये इस प्रकार लेन-देन अच्छा नही होता। आपकी दया है बस इतना ही पर्याप्त है।" यशा बोली।

पुरुषोत्तम उठ खडा हुआ, उसने कपडो को पोटली वहीं छोडदी और बोला—"निस्सकोच भाव से आप मुझे अपनी आवश्यकताएँ बताती रहे। मै अपना कर्तव्य अवश्य ही पूरा करूँगा। स्वर्गीय पण्डित जी का मेरे ऊपर इतना बडा अहसान है कि मैं आपके लिए उतना कर पाऊँगा, इस म मुझे सन्देह है।"

यशा उसको ओर देखती ही रह गयी और वह घर से बाहर चला गया।

सडक पर पहुँचते ही उसने सामने के दुकानदार से कहा—"लाला! देखो कपिल की माँ जो कुछ मँगवाया करे अवश्य दे दिया करो, पैसा हम से लेना।"

लाला उसकी ओर देखता रह गया पुरुषोत्तम ने अपना रास्ता लिया। दुकान पर खड़े ग्राहकों और पास-पड़ोस के अन्य लोगों की दृष्टि में प्रश्न वाचक चिह्न झूल गए। वे एक दूसरे से जानना चाहते थे कि पहुने वाला व्यक्ति कौन था ? पर प्रत्येक तो वहाँ स्वयं प्रश्न करने वाला था उत्तर कौन देता।

पुरुषोत्तम की बात यशा के कान में भी पड़ी थी और न जाने क्यों उसे यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी थी।

× ×

पुरुषोत्तम का घर में आना जाना आरम्भ हो गया। कभी प्रात कभी मध्यान्तर और कभी सायंकाल किसी भी समय वह आ धमकता। यशा उसका शिष्टता पूर्वक अभिनन्दन स्वागत करती और यद्यपि वह कभी भी निस्संकोच भाव से उससे अपनी आवश्यकताओं के सम्बन्ध मे कुछ न कहती तथापि वह था कि प्रति दिन कुछ न कुछ लाता ही रहता और आग्रह पूर्वक उसे यशा के पास छोड़ जाता। कभी-कभी यशा इस अनिमन्त्रित सहायता को श्रद्धा की दृष्टि से देखती पर दूसरे ही क्षण उसके मन के एक कोने से आवाज आती— 'कल्मिष के पिता के यह धानों का बदला देने वाले पर तुम श्रद्धा करती हो। छी ! कितना नीच विचार है तुम्हारा। और वह अपने पर लज्जित हो कर रह जाती।

पुरुषोत्तम की इस सहायता ने यशा को भले ही प्रभावित किया हो पर कल्मिष को यह कभी न भाया। जब भी वह आता वह दूसरे कमरे मे जहाँ रसोई बनती थी चला जाता और वहाँ से उस समय तक न निकलता जब तक पुरुषोत्तम विदा न होता। वह अपनी माँ से प्राय कहा करता— 'माँ! उस डरावने आदमी को क्यों बुलाया करती हो। वह बहुत बुरा आदमी है। यशा की त्योरियाँ चढ़ जाती और वह डाँट कर उसे चुप कर देती। उसकी समझ म यह बात ही नहीं आती थी कि

जो निस्वार्थ भाव से सहायता कर रहा है, अपनी सहायता के बदले में जो धन्यवाद तक नही चाहता, वह बुरा आदमी कैसे हो सकता है? जिस का बाह्य रूप भयानक हो, उसका अन्त रूप भी उतना ही भयानक होगा यह कसे कहा जा सकता है। देखा तो यह गया है कि चाम से जो सफेद होते हैं उनके मन भी उतने ही काले होते हैं। यह बात गलत भी हो तो भी चाम और हृदय मे भला क्या सम्बन्ध? रग-रूप और हृदय दोनो भिन्न हैं। झोपडे गन्दे होते हैं पर उनमे मन की स्वच्छता पाई जाती है। साफ सुथरी अट्टालिकाओ मे रहने वालो के कुकृत्यो को देखो तो घृणा होती है। नीड गन्दा हो तो उसमे रहने वाला पक्षी भी गन्दा होगा, यह कोई नियम नही है। अत यशा बार-बार सोचती कि उसकी देह कितनी भी भद्दी और भयानक क्यो न हो, उसका हृदय अवश्य ही निर्मल एव स्वच्छ है।

पुरुषोत्तम के सम्बन्ध मे ही विचार मग्न थी कि पद-ध्वनि सुनकर उसने जो आंख उठायी, देखा वही सामने खडा था। उसके वदन पर हर्ष नृत्य कर रहा था और ओठो से नमस्कार निकल रहा था। हाथ जुडे थे।

सिर पर पडे धोती के पल्ले को भाल तक खीच लेने के उपरान्त उसने कहा—"बैठो आज फिर भरी दुपहरी हो निकल आये। क्या तुम्हें गरमी नही सताती?"

"भाभी! पहले गरमी बहुत सताती थी, पर जब आप के घर की ओर चलता हूँ पता नही मुझे गरमी क्यो नही लगती। छाता तक हाथ मे लेने की न इच्छा होती है और न याद ही आती है।"—कहते कहते पुरुषोत्तम खाट पर बैठ गया। जेब से मिठाई निकाल कर रख दी। बोला—"बाजार मे चला आ रहा था सोचा कुछ मिठाई ही ले चलूँ।"

'तुम यह क्या किया करते हो ? मुझे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता।" किंचित खिन्नता प्रकट करते हुए भक्ता बोली।

यह तो मैं कपिल के लिए लाया हूँ भाभी।"

पर यह तुम्हारी एक चीज भी नहीं छूता। वह तुम से बहुत डरता है।"

पुरुषोत्तम हँस पड़ा और कहने लगा—"भाभी! तुम तो मुझ से नहीं डरतीं ?

'मुझे क्या डर ? डर तो शत्रुओं से होता है।'

कभी-कभी अपने भी तो शत्रुता कर बैठते हैं।"

"अपना मन चंगा तो कठौती में गंगा। अपने आपे को शुद्ध रखना चाहिए। किसी के साथ बैर न करो तो लोग क्यों बैर करेंगे ?

'तो आपने किस के साथ क्या बुरा किया था जो इतने झंझट में फँसी हो।

नहीं श्रीमान् जी! यह तो सब अपने कर्मों का फल है जो भुगत भोग रहे हैं।'

तो फिर किसी के साथ यदि कोई अन्याय करे तो वह उसे अपने कर्मों का फल समझ कर क्यों नहीं सहन कर लिया करता ? विरोध क्यों करता है ?'

श्रीमान् जी मैंने शास्त्र थोड़े ही पढ़े हैं बस इतना जानती हूँ कि अपना हृदय और व्यवहार पवित्र होना चाहिए। कोई शत्रु भी हो तो वह आखिर में शत्रुता करते-करते थक कर बैठ जायेगा जब गाली का उत्तर गाली में निकलता है तभी लड़ाई होती है। मौन रहने वाले से क्या लड़ाई होती है।

भक्ता की बात सुन कर पुरुषोत्तम कुछ सोचने लगा और फिर बोला— 'भाभी ? संसार में कुछ लोग ऐसे भी तो होते हैं जिनके

अन्यायी के सामने सिर झुका दिया जाये तो उनका दिमाग और भी चढ़ जाता है। ऐसी दशा में मौन तो अन्याय की वृद्धि में सहयोगी सिद्ध हुआ।"

"तुम तो मुझसे शास्त्रार्थ सा करने लगे। मैं क्या जानूं इन बातों को। मैं तो बस इतना कह सकती हूं कि अन्याय का सब से बड़ा प्रतिकार है अन्याय के प्रति घृणा और असहयोग। पर अन्यायी के प्रति दया के भाव होने चाहिएँ क्योंकि वह रोगी होता है और जो रोगी तथा पथभ्रष्ट होता है उसके प्रति करुणा का भाव उस के रोग मुक्त करने और सत्पथ लाने का अत्युत्तम उपाय होता है।"—यशा ने समझाते हुए कहा।

भाभी! तुम्हारी बातें तो इतनी ऊँची होती हैं कि क्या कहूँ। लो—मैं भी क्या बात ले बैठा।—बात टालने के लिए ही कदाचित् पुरुषोत्तम ने कहा।

यशा कुछ मुस्कराई और बोली—"आप! प्रश्न तो करते हो और उत्तर से कतराते हो, यह भी खूब है।"

वार्ता को दूसरी ओर मोड़ने के विचार से पुरुषोत्तम ने पूछा—"हां भाभी! कई दिन से सोच रहा हूं आपकी इस तपस्या का क्या परिणाम होगा?"

"कैसी तपस्या?" विस्मित होते हुए यशा ने पूछा।

"यही आप जो कर रही हैं।"

"मैं और तपस्या? आज कैसी अटपटी बात कर रहे हो?"

"नहीं भाभी! इतने कष्टों का भरा है आपका जीवन कि जब सोचता हूं रोना आता है। आप अकेली, काँटों भरी अपनी लम्बी जीवन-यात्रा की राह को कैसे पार करेंगी?" बहुत ही गम्भीर होकर पुरुषोत्तम ने कहा। उसके चेहरे के भाव बता रहे थे कि वह बात मानो उसकी दिल की गहराई से आ रही थी।

एक बार इस प्रश्न को सुनकर मझा चौंक पड़ी। उसने गर्दन उठा कर पुरुषोत्तम की ओर देखा। वह जैसे गहरे चिन्तन में डूबा हो ठुड्डी को हाथ में लिए हुए, पैर पर कोहनी जमाए बैठा था उसकी दृढ़ और चौड़ी कमर उस समय झुकी थी।

मझा ने मौन रहना ही उचित समझा।

पुरुषोत्तम ने फिर कहा— क्यों भाभी! पण्डित जी के स्वर्ग वास के पश्चात् तो आपको एक-एक दिन पहाड़ की भाँति बीतना होगा? अकेले कैसे जी लगता होगा?'

अब वह बोली— अकेली रहती ही कहाँ हूँ। हर समय कपिल तो पास रहता ही है।

यह बेचारा छोटा सा बालक आप की बात तो नहीं समझता होगा आप न इस से अपने मन की कह सकती हैं और न कोई परामर्श ही ले सकती हैं। पुरुषोत्तम ने पुनः बड़ी गम्भीर प्रश्न उठाया जिस पर मझा मौन रहना चाहती थी।

बालक गुड़ियों से मन बहला लेते हैं। उन गुड़ियों में प्राण तो नहीं होते फिर भी उनसे बच्चे बातें करते हैं हँसते बोलते हैं— मझा ने उत्तर देते हुए कहा—और मेरे पास तो एक ऐसा खिलौना है जो मेरी कोख से पैदा हुआ है, जिसकी धमनियों में मेरा रक्त है जिसके हृदय की धड़कनों में मेरी धड़कनें समाती हैं जो हँसता भी है बोलता है कुछ-कुछ समझने भी लगा है। कामों में मेरा हाथ भी बटाता है। फिर मुझे किस बात की कमी है?'

भाभी! स्त्री को ... कहते-कहते पुरुषोत्तम रुक गया। वह अपने एक हाथ की उँगलियों में दूसरे हाथ की उँगलियाँ फंसा बैठा और उनकी ओर देखने लगा। कुछ देर बाद पुनः बोलना आरम्भ किया— "क्षमा करना भाभी! स्त्री और पुरुष तो चाँद और चाँदनी दीपक और

वाती, देह और प्राण और एक गाड़ी के दो पहियों की भांति हैं। इन में एक के भी न रहने से क्या दूसरे का जीवन कुछ रह जाता है?"

यशा के नेत्र सजल हो गए। अपने आप को नियन्त्रित करते हुए बोली—"तुम्हारी बात ठीक है। पर यह सब उपमाएँ दम्पत्ति के लिए दी गयी हैं। उन लोगों के लिए नही जो अकेले हैं या हो गए है। जैसे राजा की कन्या और तुम दोनो मे एक स्त्री है दूसरा पुरुष। लेकिन फिर भी कौन कह सकता है कि तुम चांद और वह तुम्हारी चांदनी है, या एक ही गाडी के तुम दोनो पहिए हो। तुम दीपक हो और वह वाती है, यह कैसे सम्भव है, न तुम दीपक हो और न वह वाती। इसी प्रकार जब स्त्री पुरुष दोनो का जीवन सूत्र परस्पर बंध जाता है तब ही तुम्हारी उपमाएँ ठीक बैठती हैं। दोनो के बिछुड जाने के बाद दोनो अपने-अपने स्थान पर एक पूर्ण इकाई हो जाते हैं। जब दो हृदयो का सूत्र एक दूसरे से बंध जाता है तब एक दूसरे का पूरक रहता है। पर ऐसा न होने पर प्रत्येक अपने आप मे पूर्ण होता है। तुम जो कह रहे हो उसके अनुसार तो दो मे से एक के न रहने पर दूसरे को निर्जीव हो जाना चाहिए। पर ऐसा नही होता। एक के स्वर्गवासी होने पर दूसरा जीवित रहता है। हां फिर जीवन की गति में अन्तर आ जाता है, रूप बदल जाता है। परिस्थितियां बदल जाती हैं। फिर एक की समाप्ति से उत्पन्न हुई समस्याओ को सुलझाना, आने वाले सकटो का सामना करना, इसी प्रकार सघर्ष के बीच जीवित रहना ही जीवन रह जाता है। मेरे विचार से सघर्षों का नाम ही तो जीवन है। वीर तो वह है जो रणस्थल मे एक भुजा कटजाने पर भी उस समय तक लडता रहे जब तक उस के शरीर मे धडकन शेष रहती है।"

"तुमने तो पूरा व्याख्यान ही दे डाला—पुरुषोत्तम ने कहा, उसे यह बात कुछ रुचिकर नही लगी थी, अत अपनी बात को पुन दोहराने के लिए और अपनी इच्छानुसार बात का रग लाने के लिए उसने कहा—

मेरा तो पूछने का अर्थ केवल इतना है कि क्या तुम्हें अपने जीवन में कुछ रिक्तता सी अनुभव होती है ? तुम्हें कोई कमी खटकती है ?

'पहले मुझे यह बताओ आप कि क्या कोई ससार में ऐसा व्यक्ति भी है जिसे अपने जीवन में कोई कमी न खटकती हो ? सब प्रकार के सुख तो किसी को प्राप्त नहीं होते ! —मधा ने उत्तर देते हुए एक प्रश्न उठाया और अपने ही ओर से उसका उत्तर भी दे दिया। मानो उसे विश्वास था कि उसका उत्तर ही प्रमाणित एव स्वय सिद्ध है।

पुरुषोत्तम परेशान हो गया। जो वह जानना चाहता था वही बात उसके पल्ले नही पड़नी थी। पर उसने साहस न त्यागा। उसने कहा 'भाभी ? मैं कोई दार्शनिक तो हूँ नहीं। मै तो केवल यह पूछना चाहता था कि क्या यह सच है कि नारी का बिना पुरुष के और पुरुष का बिना नारी के काम नही चल सकता। मधा ने उत्तर दिया— यदि यह सच होता तो लोग आजीवन ब्रह्मचारी कैसे रह पाते ?'

'तो फिर लोग विवाह को आवश्यक क्यों मानते हैं ?'

ससार की सृष्टि विवाह द्वारा होती है। अन्य आवश्यकताओं की भाँति पुरुष के लिए नारी और नारी के लिए पुरुष की भी आवश्यकता है पर हवा पानी और भोजन जैसी नहीं।

मधा के इस उत्तर ने जो उल्लास पुरुषोत्तम के बदन पर आ रहा था वह अन्तिम शब्दों ने समाप्त कर दिया। अत निराश हो कर उसने कहा— अच्छा भाभी ! आज की वार्ता बहुत लाभदायक रही अब मैं चलता हूँ।

कुछ चाये पियेंगे नहीं ? देखिये मैं तो बातों मे ही इतनी उलझी कि सब कुछ भूल गयी। —मधा ने खेद प्रकट करते हुए कहा।

पुरुषोत्तम फिर भी उठ खड़ा हुआ।

× ×

कौशाम्वी के राज पुरोहित प० शकुनी दत्त अपने कमरे मे आसन पर विराजमान है। पास खडा सेवक पखा झल रहा है। पण्डित जी किसी पुस्तक के पन्ने उलट रहे हैं।

सामने दृष्टि गयी तो देखा शम्भू अपनी निश्चित चाल से कमरे मे प्रवेश कर रहा है। पण्डितजी ने पुस्तक एक ओर रख कर उत्सुकता वश कहा—"आओ शम्भू। कहाँ खो गए थे? कई दिन से दिखायी ही नही दिए।'

शम्भू प्रणाम करके उनके निकट के आसन पर आ वैठा और बोला—"पहले थोडा सा शीतल जल पिऊँगा।

शकुनि दत्त ने सेवक की ओर देखा।

पखा रखकर सेवक जल लेने दौडा। पण्डित शकुनीदत्त कुछ आगे की ओर झुक गए और बहुत ही सावधानी से वोले—"तो हाँ क्या रहा? सुनाओ कहाँ-कहाँ रहे? क्या किया?"

"गरमी मे चला आ रहा हूँ, पहले ठण्डा हो लूँ फिर आद्योपान्त सब कुछ सुनाऊँगा।"—

अपने औत्सुक्य को दवा कर पण्डित जी मौन रह गए। फिर गरज पडे, अरे कहाँ मर गया? अभी तक एक लोटा जल नही ला सका।"

अन्तिम शब्द समाप्त होते होते सेवक कमरे मे प्रविष्ट हुआ। पण्डित शकुनी दत्त ने उसे जी भर कर लताडा।

पानी पीकर शम्भू ने एक लम्बी स्वास ली और फिर सेवक को सम्बोधित करके बोला—तो अब कुछ देर तुम अन्दर का काम देखो। सेवक के जाते ही शकुनी दत्त ने कहा—"तो अव वोलो।"

'जल्दी क्या है तुम लेना भुलाने ही तो आया हूँ। तनिक पंखा तो दीजिए इधर।" शम्भू ने कुरते के बटन खोलते हुए कहा।

पण्डित जी ने पंखा तो उठा कर दे दिया पर जी में आया कि एक मोटी सी गाली दे और अपना क्रोध झाड़ दें पर वे समय को पह चानते थे अतः मौन ही रह गए।

कुछ देर पसीना सुखा लेने के उपरान्त शम्भू बोला— 'लो जी रंग तो जम गया।"

शकुनीवत उल्लसित हो गए। मन्द मन्द हंसी अधरों पर ला मधी बोले— 'शम्भू! तुम आदमी उस्ताद हो। मैं तो इसीलिए तुम्हारी कद्र करता हूँ। —अच्छा मैं भी तो सुनू कैसे-कैसे बात रही।

'पण्डित जी! वह स्त्री महान् है। बड़े ऊंचे विचार हैं उसके।"

'उसके विचारों को गोली मारो मैं पूछ रहा हूँ कैसे बात बनी और वह लगा है उसकी प्रशंसा करने में। —चिढ़कर पण्डित जी बोले। शम्भू को यह बात बुरी लगी फिर भी उसने कोई आपत्ति न कर कहना आरम्भ किया — पहले दिन की बातें तो मैं पहले आपको सुना ही चुका हूँ। आपकी आज्ञानुसार मैं प्रति दिन उसके घर जाता रहा। धीरे धीरे मैंने पुरुषोत्तम के रूप में उसका पक्का देवर बनकर अपना रंग जमा लिया। यद्यपि कपिस अभी तक मेरे पास नहीं फटकता मगर पूरी तरह मुझ पर विश्वास कर बैठी है। रोज कुछ न कुछ वहां दे आता हूँ। मुहल्ले वाले मुझे आते-जाते देखते ही हैं और कोई देखे या न देखे मैं अपने को अवश्य ही दिखा देता हूँ। लोगों से बोलता चालता आता हूँ।"

'शाबास शम्भू! चिरायु हो। तू भी कमाल करता है। प्रफु-ल्लित हो कर पण्डित जी ने मुक्तकण्ठ से कहा।

'परन्तु पण्डित जी! वह स्त्री बहुत सच्चरित्र ज्ञानवती और उच्च विचारों की है। उसका हृदय गंगा की भांति पवित्र और निर्मल है।

मैं अब भी कहता हूँ आप मानें या न मानें वह पवित्र है सच्चरित्र है सती है। उसके हृदय को पाप छू तक नहीं गया है। वह बेचारी नहीं जानती कि मैं उसे धोखा दे रहा हूँ। वह अपनी भाँति ही दूसरे को पवित्र हृदय मानती है। वह छल कपट से अनभिज्ञ है।' — शम्भू ने भी काफी ऊँचे स्वर में कहा।

शकुनीदत्त जल उठा। वह भी जोर से बोला— 'शम्भू! समय बता देगा कि वह स्त्री कितने पानी में है। मैं देख रहा हूँ कि उसने तुम पर जादू कर दिया है। तुम उस से प्रभावित हो। शकुनीदत्त का अनुमान आज तक गलत सिद्ध नहीं हुआ।

'तो आप का कहने का अर्थ यह है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। — मरल कर शम्भू ने पूछा।

शकुनीदत्त की भृकुटि संकुचित थी उसने कहा— 'मैं नहीं जानता कि तुम झूठ बोल रहे हो या सच। पर तुम उस स्त्री का अनुचित पक्ष ले रहे हो।"

'पिताजी! स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा बना दिया है।

अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करने वाला यदि स्वार्थी होता है तो मैं भी स्वार्थी हूँ।"— शकुनी दत्त ने छाती ऊँची करते हुए कहा।

आत्म-कल्याण का यह अर्थ कदापि नहीं है कि दूसरों के हितों को नष्ट किया जाये दूसरों पर झूठे लांछन लगाए जाएँ और दूसरों को नष्ट कर डालने के लिए षड्यन्त्र रचे जायें। यह कौन से दुष्कर्म हैं जो आप काश्यप परिवार के विरुद्ध करने को आतुर नहीं है?

शकुनी दत्त इतनी गहरी चोट खा कर मौन रह जाने वाला न था उस की मुट्ठियाँ बंध गयीं आँखें आग उगलने लगीं तड़प कर बोला— 'ठोकर खाकर सर पर चढ़ जाने वाली धूल की भाँति मेरे मुँह पर आकर मत मलो। जिन्हें दुष्कर्म कहते हो वे सब यही कर्म हैं, जो

तुम्हारे हाथो,—तुम्हारे द्वारा हुए और हो रहे है। इतने पुण्यात्मा हो तो क्यो अपराधो मे लिप्त हो ?"

'मैने जो कुछ किया है वह आपके आदेश पर। मै वह छुरी हूँ जो कसाई के हाथ मे पहुँचकर निरपराधी पशुओ का वध अवश्य करती है, पर बध के पाप मे उसका कोई भाग नही होता।"

"वाह! वाह! बहुत अच्छी व्याख्या कर दी पाप और पुण्य की। —शकुनीदत्त ने चिढकर कहा—माना मेरे साथ किए गए कार्यों मे तुम्हारा अपना कोई दोष नही, फिर वह दुष्कर्म जिनके कारण तुम्हे कारावास काटना पडा, किसके कहने पर किए थे ?"

"पण्डितजी! मैं निरपराधी था, कह तो चुका हूँ व्यर्थ ही मे मुझे दण्ड भोगना पडा।"—शम्भू ने कहा।

बात कहाँ मे चली कहाँ तक पहुँच गयी। यह देख शकुनीदत्त को होश आया और उसने फिर अपने को सयत करके कहा—"देखो शम्भू! इस प्रकार आपस मे कटुता उत्पन्न करना कोई बुद्धिमानी नही। मैं तुम पर कोई आक्षेप नही कर रहा था, पर मुझे तुम्हारे इस व्यवहार पर आपत्ति है कि तुम उसी का पक्ष लेते हो जो आज कल हमारे क्रोध का निशाना बनी हुई है। जब शिकारी की सहानुभूति शिकार से होगी तो विश्वास रक्खो उसका निशाना कभी सच्चा नही पडेगा। मुझे उसकी सच्चरित्रता और दुश्चरित्रता किसी से भी कोई सरोकार नही। पर मैं यह भी नही देख सकता कि तुम भावुकतावश उसके पक्षपाती हो जाओ।"

"पण्डित जी! मै फिर आपको स्मरण करा दूँ कि मैं पत्थर नही हूँ, मुझे जो अनुभव होता है मै उसे प्रगट करने में कभी नही हिचकता —शम्भू ने स्वर को कुछ सयत करते हुए कहा।—जिसके विरोध में आप काम करना चाहते है वह नीच ही होगा, यह आवश्यक नही है। जब आपने किसी को निकट से देखा नही, फिर उसके बारे मे आप

अनुमान कैसे लगा लेते हैं ? और मुझे आप इतना मूर्ख और नीच कैसे मान बैठते हैं। मेरे मत का तिरस्कार करना और मेरे विचारों व मेरी अनुभूतियों को ठुकराकर मेरा अपमान करदेना भी क्या मुझे असह्य नहीं होगा।

शकुनीदत्त मौन रह गया उस समय नीति अनुसार मौन रहना ही उसने उचित समझा था।

शम्भू ने उठ जाना उचित समझ कर कहा— अच्छा पण्डित जी ! अब मैं जाता हूँ जब कभी अवकाश मिलेगा यहाँ हो जाऊंगा।"

शकुनीदत्त ने देखा कि शम्भू खिन्न है अतः उसे रोकते हुए बोला — 'शम्भू ! अभी कुछ और आवश्यक बातें करनी हैं तनिक रुक कर जाना।

खड़े हो कर शम्भू बोला— 'पण्डित जी ! इस समय मेरा चले जानाही ठीक है। और फिर अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं स्वर्गीय काश्यप के परिवार के विरोध के किसी भी कार्य में हाथ न डालूंगा।

विस्मित हो कर शकुनी दत्त ने पूछा— क्यों ? यह निश्चय कैसे कर लिया ?'

मैं नहीं चाहता कि उस सच्चरित्र एवं पवित्र हृदय की स्त्री और उसके अबोध बालक के विरोध में कुछ करके पाप कमाऊं।

शकुनीदत्त को मयस्क कुछ बुरे नजर आये। अतः अपने चातुर्य को काम मे लाना ही श्रेयस्कर समझ कर उसने कहा— बैठो शम्भू ! तुम्हें यह बताना होगा कि तुम मुझ मे सम्बन्ध विच्छेद कर रहे हो या मेरे किसी व्यवहार के प्रति विरोध प्रदर्शन ? आखिर इस असहयोग का क्या अर्थ है ?'

'जिसको मैं उचित नहीं समझता उस काम मे सहयोग नहीं दूँगा। बैठे हुए शम्भू ने कठोर शब्दों में कहा।

"तुम काम करते हो और उसका पूरा-पूरा पारिश्रमिक लेते हो फिर तुम्हे किसी काम से इन्कार करने का क्या अधिकार है ?"

"जो काम मै नही करूँगा उसका पारिश्रमिक भी नही मांगूँगा"

शकुनी दत्त बडा भन्नाया । कुछ देर सोचा और फिर बोला—"शम्भू ! तुम जानते हो कि तुम्हे एक बार चोरी के मामले मे दण्ड मिल चुका है और जब तुम कारावास से बाहर आये थे, तब भी पुलिस ने तुम्हारा पीछा न छोडा था । लोग तुम्हे घृणा की दृष्टि से देखते थे। तुम्हारे पास उदर पूर्ति का कोई साधन न था । ऐसे समय मे मैने तुम्हे सहारा दिया और उसके बाद कितनो ही बार तुम्हारी राजकोप राज-दण्ड और अनेक विपत्तियो मे रक्षा की । कितने कृतघ्न हो तुम कि आज उन सब अहसानो को उठाकर ताक मे रख दिया । तुम यह भी भूल गए कि तुम्हारे अपराधो की लम्बी सूची मेरे पास है, यदि मै चाहूँ तो तुम्हे सारा जीवन काल कोठरियो मे तडप-तडप कर व्यतीत करना पडे ।"

शम्भू सोच मे पड गया । वह पण्डित शकुनी दत्त की रग-रग से परिचित था, वह जानता था कि जिसने अनेक अपराधो का जाल बिछाया, वह उसे भी फँसा सकता है अत वह बोला—"पण्डित जी ! माना मै आपके कारण काल-कोठरी की हवा खा सकता हूँ । पर आप भी ऐसा अवसर आने पर अप्रभावित न रहेगे । लोग जब यह जानेगे कि आप सभ्यता और पाण्डित्य के आवरण मे छिपे हुए षडयन्त्रकारी हैं और आप के इशारे पर अनेक अपराध होते रहे है, तो चाहे आप अपनी युक्ति से राज्य-दण्ड से भले ही बच जाये पर लोगो मे आपकी प्रतिष्ठा का दिवाला पिट जायेगा । और तब मुझे दण्डित कराते-कराते आप स्वय भी दण्डित हो जायेगे । सब से बडी न्यायालय तो यह समाज है ।"

तत्काल शकुनीदत्त बोल उठा—"तुम भूलते हो शम्भू ! कि प्रभुता, शक्ति और सम्पत्ति का इस समाज मे क्या महत्त्व है ? कदाचित् तुम यह नही जानते । राम नाम के दुपट्टे मे और लक्ष्मी के वरदहस्त की

छवि में घोरतम अपराध छुप जाया करते हैं। निर्धनों की तनिक सी भूल अपराध बन जाती है और बड़ों के अक्षम्य अपराध भी क्षम्य हो जाते हैं। लोग शक्ति के पुजारी हैं शम्भू! लक्ष्मी और दुर्गा की पूजा करते हैं और ब्रह्मा का नाम लेकर छोड़ देते हैं। तुम चीख-चीख कर कहोगे कि शकुनी दत्त अपराधी है, और मैं हँस दूंगा। लोग कहेंगे शम्भू पागल हो गया है अपने अपराध को छुपाने के लिए राजपुरोहित पर लांछन लगा रहा है और इस से पहले कि तुम अपनी बात के प्रमाण प्रस्तुत करो काल-कोठरी में ठूंसे दिए जाओगे।

शकुनी दत्त के शब्दों में अभिमान की झंकार निहित थी।

शम्भू उन शब्दों को बुद्धि की कसौटी पर परख रहा था। उसे इन शब्दों के मर्म में अकाट्य सत्य के विद्यमान होने का अनुमान हुआ। वह सोचने लगा कितना कडुवा है यह सत्य। पर है सत्य ही।

पण्डित शकुनी दत्त अपने आसन से उठा और शम्भू को सोचता छोड़ निकट के कमरे में चला गया। अब वहां से लौटा तो उसके हाथ में मुद्राओं की थैली थी। शम्भू के पास जाकर उसने थैली को जोर से हिलाया मुद्राओं की खन-खन छन-छन की मधुर झंकार से शम्भू के कानों में गुदगुदी सी उठी उसे बहुत प्रिय थी यह झंकार। ऐसा लगता मानो लक्ष्मी के नूपुरों की ध्वनि उसके कानों में रस घोल रही है। शकुनी दत्त ने थैली उसकी गोद में फेंकदी और हाथ झाड़ कर अपने आसन पर जा बैठा। स्वर में मधुरता लाते हुए बोला—

'शम्भू! हम दोनों साथ-साथ चलते-चलते बहुत दूर निकल आये है, अब वापस लौटना हम में से किसी के बस की बात नहीं और इस यात्रा में दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं। विचार भिन्न हो सकते हैं उद्देश्य एक ही है अतः इस प्रकार छोड़कर तुम नहीं भाग सकते। जाओ और सफलता का शुभ समाचार लाकर सुनाओ। यही कुछ मुद्राएँ तुम्हारी प्रतीक्षा में प्रसन्न रक्खी होंगी।

शम्भू ने कभी मुद्राओं की थैली पर दृष्टि डाली और कभी वक्र दृष्टि से शकुनी दत्त को देखा। मस्तिष्क झनझना उठा।

कमरे में कुछ देर के लिए निस्तब्धता छागयी। शकुनीदत्त ने उसे भग करते हुए कहा—"हमे किसी की पवित्रता और अपवित्रता मे मतलब नही। हमे अपने भविष्य की चिन्ता है और शम्भू! ससार में वही मूर्ख कहलाता है जो दूसरो को पीछे धकेलता हुआ स्वय आगे नही निकलता। सुख और वैभव उच्च शिखर पर जाकर मिलते हैं और उस उच्च शिखर पर पहुँच ने के लिए दूसरो के स्वार्थो के शवों की सीढी बनानी पडती है। ससार मे कौन है जो सुख नही चाहता,यदि हम ही अपने सुख के लिए कुछ करते हैं और हमारे सुख के लिए कुछ लोगों के स्वार्थों की बलि होनी है, तो इस मे हमारा क्या दोष? दूसरे भी हमारी ही तरह अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रयत्न करे।"

शम्भू ने एक वार बहुत लम्बा स्वांस खीचा, जिसमे उसकी छाती की चौडाई अनुमानत २ इञ्च बढ गयी होगी। फिर कुछ क्षण बाद धीरे-धीरे उस हवा को बाहर निकाला। मानो वह अपने क्रोध के भावो को अपने अन्दर से बाहर कर रहा हो।

शकुनीदत्त की पैनी दृष्टि उसके मुखमण्डल पर जमी थी, वह उसके मनोभाव उसके चेहरे से ही पढ लेना चाहता था।

गम्भीर और विचारमग्न शम्भू कुछ देर मौन बैठा रहा। और फिर अनायास ही उसने दृढता पूर्वक थैली अपने हाथ मे पकडी। शकुनीदत्त की ओर देखा और उठ खडा हुआ। शकुनीदत्त ने कुछ न पूछा।

शम्भू प्रणाम करके कमरे से बाहर चला गया।

— चार —

राधा कपिल को नया कुरता पहना रही थी। कपिल बहुत प्रसन्न था। जब कुरता पहना चुकी एक बार उसने स्नेह पूर्वक उसे ध्यान से देखा और नए कुरते में जब उसने कपिल का रूप दुगुना पाया तो हर्ष विभोर होकर एक बार उसे चूम लिया। और पुलकित होकर बोली — 'बेटे! यह कुरता तेरे चाचा जी के लाए हुए कपड़े का है। कितना अच्छा लगता है तू इसे पहन कर।

प्रफुल्लित कपिल ने जब यह सुना उसका हर्ष जाता रहा और तुरन्त बटन खोलने लगा। राधा यह देख बोली— 'बटन क्यों खोलता है इसे पहने रह।

तमक कर कपिल बोला— 'नहीं नहीं मैं इसे नहीं पहनूँगा''

विस्मित हो राधा ने पूछा— क्यों नहीं पहनेगा?

'मैं ऐसे आदमी का कुरता नहीं पहनता।

कैसे हैं वे?''

बहुत बुरा। उसने मुझे पकड़ा था। वह मुझे एक बड़े मकान में ले गया था। वह मुझे मारने ले गया था। मैं उसका कुरता नहीं पहनूँगा। — कपिल ने कुरता उतारते हुए कहा।

राधा झल्ला उठी। आवेश में आ कर कहा— नहीं पहनता तो न पहन। नया रख। तेरा भेजा फिर गया है।

कपिल ने कुरता निकाल कर फेंक दिया।

यशा दांत पीसती हुई उठी और कुरता उठा कर झाडते हुए बोली—तेरे भाग्य म ही नही है नया और अच्छा कपडा। इतना विगडा हुआ दिमाग है तो याद रख तुझे कभी नया कपडा न मिलेगा।"

"हां, मैं नगा ही रहूंगा। पर उस बदमाश का लाया कपडा नहीं पहनूंगा, नहीं पहनूंगा।"—ऊंचे स्वर मे कपिल बोला। मानो उसने प्रतिज्ञा करली हो।

क्रुद्ध यशा का हाथ उठ गया और एक थप्पड उसके गाल पर जडते हुए कई गालियां दी और कुरता खाट पर फेंक दिया। थप्पड खाकर पहले तो कपिल आश्चर्य तथा क्रोध मिश्रित दृष्टि से अपनी मां को देखता रहा और फिर अनायास ही बडे जोर मे रो पडा।

"कपिल को क्यो रुला दिया ?"

क्रुद्ध यशा ने घूम कर देखा पुरुषोत्तम खडा था।

"आज प्रात काल ही कपिल को क्यो रुला रही हो ?"

"यह बहुत हठी हो गया है ?"

"बच्चे तो हठी होते ही हैं। यह कोई नई बात नही है।"

तुम जो कपडा लाए थे, कल इसके लिए मैंने उसमे से कुरता सिया था आज पहनाने लगी तो उतार कर फेंक दिया। कहता है यह कुरता नही पहनूंगा।"—यशा ने कहा।

"लाओ हम पहनाते है।" कहा है ?"

"रहने दो, इसे नगा ही घूमने दो।"

पुरुषोत्तम ने खाट पर से कुरता उठाया और रोते कपिल के पास पहुंचकर उसे पहनाने का प्रयत्न करते हुए बोला—"लो बेटा कुरता पहन लो। फिर तुम्हारे लिए मिठाई लायेगे। तुम हमारे साथ बाजार चलना।"

कपिल दूर हट गया। रोते-रोते बोला—"हम नही पहनेगे।"

पुरुषोत्तम ने आगे बढ़कर बल पूर्वक पहनाना चाहा। कपिल ने क्रुद्ध होकर एक चपत उसके गाल पर अपनी पूरी शक्ति से मारी। वह कुछ झेंप सा गया। क्रोध भी आया पर उसे दबा गया और कुरता वहीं छोड़ कर मधा से बोला— इस का तो भेजा ही बिगड़ गया है।

मधा कपिल की ओर क्रुद्ध सिहनी की भाँति दौड़ी।

'अब रहने दो भाभी!

नहीं यह बिगड़ता जा रहा है। बड़ों पर हाथ उठाता है।

पुरुषोत्तम ने मधा को रोकते हुए कहा— आप क्यों बिगड़ती हैं। अभी नादान है कुछ दिनों में स्वयं समझ जायेगा।

मधा आग्नेय नेत्रों से कपिल की ओर देखती रह गई।

आओ भाभी! इसे तनिक यहीं हवा खाने दो बालक पर अधिक क्रोध और अधिक लाड़ दिखाना दोनों ही हानिप्रद होते हैं। चलो चलकर कमरे में बैठें। अपने आप इसका नशा उतर जायेगा— पुरुषोत्तम ने प्रस्ताव किया।

मधा पुरुषोत्तम के साथ कमरे में जा बैठी। उसका मन उद्विग्न था वह कपिल के बढ़ते हुए हठ पर्ण स्वभाव से चिन्तित थी। छोटा सा लड़का और बात-बात से अपने मन की ही चलाता है मधा की सीख पर ध्यान ही नहीं देता यह बात उसके मन में काँटे की भाँति करक रही थी।

क्या सोच रही हो भाभी?

'कुछ नहीं।

'कुछ तो बात है जिसने तुम्हें चिन्तित कर रक्खा है!

तुम नहीं जानते लाला जी! मेरे जीवन का एक ही तो सहारा है यह कपिल। पर जब देखती हूँ कि यही मेरी अवहेलना करता है तो मेरा हृदय दो टूक हो जाता है।

"वस इतनी सी वात ने तुम्हे इतना पीडित कर रक्खा है ? आप भी राई का पहाड वना देती ह । भला यह भी कोई ऐसी वात है कि जिस पर ।"

यशा वात काटते हुए वोली—"तुम नही जानते पुरुषोत्तम ! वालक एक कोमल टहनी की भाँति होता है । टहनी जिस ओर मुड जाती है वस उसका भविष्य भी उसी के साथ, उसी दिशा मे मुड जाता है और वृक्ष उसी दिशा मे फलता फलता है । मैं कपिल के हठी स्वभाव के कारण इस लिए—चिन्तित हूँ कि मै इसे पढा लिखाकर योग्य वना देना चाहती हूँ और यदि इसका यही स्वभाव रहा तो यह विद्याध्ययन नही कर पायेगा ।"

"वात तो आपकी ठीक है—पुरुषोत्तम रूपी शम्भू ने गम्भीरता का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि इस के लिए योग्य सरक्षक की आवश्यकता है । तुम्हारा लाड-प्यार और इस से बढकर तुम्हारा स्वय का क्षमाशील, गम्भीर और चिन्तनशील स्वभाव इस की आदतो मे सुधार नही कर सकता । भाभी ! वेटी को मा का और वेटे को वाप का सरक्षण चाहिए ।"

"कदाचित् तुम्हारी ही वात सच हो—यशा वोली—पर मुझे तो वर्तमान परिस्थितियो मे सोचना है, वाप की छत्र-छाया चली गयी, अव क्या यह यू ही मूर्ख रह जायेगा ?"

"नही पढेगा तो मूर्ख ही रहेगा ।"

"मुझे एक वात सदैव परेशान करती है । जब कपिल के पिताजी मरणासन्न थे तब उन्होने मुझसे वार-वार कहा था कि यशा ! जैसे भी हो कपिल को विद्वान बनाना ताकि इस कुल की प्रतिष्ठा जीवित रहे । मैंने उनके सामने सकल्प किया था कि जैसे भी होगा मैं कपिल को अवश्य ही पढाऊँगी । पर अव देखती हूँ कि कपिल का मन पढने की ओर तनिक भी नही है । सारे दिन मिट्टी मे खेलता रहेगा, मेरी आँख वची और यह भागा गली मे । ढूँढ ढूँढ कर लाती हूँ पढाने का प्रयत्न करती हूँ । पर

इस ओर तो उसकी रुचि ही न जाने कौन से अशुभ क्षणों में इस का जन्म हुआ था। जब यह सत्कर्म मुझे याद आता है और इस की दशा देखती हूँ तो मुझे कितनी पीड़ा होती है बस मैं ही जानती हूँ। मामा जी! कभी-कभी इसी उधेड़बुन में कि क्या करूं कैसे कपिल को शिक्षा की ओर आकृष्ट करूं सारी-सारी रात आँखों में निकल जाती है।"—यशा की पलकों की कोर गीली हो गयी थी। मन की व्यथा ने कण्ठ को भी प्रभावित कर दिया था।

मानो पुरुषोत्तम को भी उसकी व्यथा से दुःख हुआ हो उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और फिर शीघ्रता से पूछ बैठा—"तुम इसे गुरुकुल क्यों नहीं भेजतीं?"

विवशता के बिहगों पर चढ़ कर मुसकान का विकृत रूप अधरों तक आया और 'तुम' की ध्वनि पीड़ा की व्यंजना का रूप देकर मूक हो गयी यशा ने कहा—"मामा जी! तुम क्या नहीं जानते कि राज पुरोहित शकुनी दत्त की इस राज्य में आजकल तूती बोलती है और वह हमारा शत्रु है। उसका कदाचित् कोई ऐसा आदेश है कि गुरुकुल में कपिल शिक्षा प्राप्त न कर पाये। तुम्हीं बताओ फिर कौन इसे भर्ती करने को तैयार होगा?"

पुरुषोत्तम जैसे कुछ जानता ही न था। विस्मय प्रकट करते हुए बोला—"यदि ऐसा है तो यह राज-पुरोहित तो बड़ा ही दुष्ट है।"

"मैं ऐसा तो नहीं कहती पता नहीं किस जन्म का बैर निकाल रहा है।"

"क्या सच भाभी तुम्हारे हृदय में राज-पुरोहित के प्रति क्रोध अथवा घृणा का भाव नहीं है?"

"मामा जी! किसी पर व्यर्थ ही क्रोध करने में क्या लाभ! घृणा तो मनुष्य के हृदय में ऐसा विष बीज बोती है कि वह स्वयं उसी मनुष्य का भी नाश कर डालती है। बैरी के प्रति भी करुणा का भाव हो तो मनुष्य का धर्म है।"

'भाभी ! तुम्हारे विचार कितने पवित्र हैं ?"

"पर विचारो मे ही तो जीवन वाहिनी नही चलती ।

"देखता हूं आप के अन्तर मे पीड़ा का साम्राज्य है। क्या अपने हृदय के इस नासूर का जो क्षण प्रतिक्षण रिसता रहता है, आपने कोई उपचार भी सोचा है ।"

"असाध्य रोग का क्या उपचार ?"

'नही रोग तो कोई असाध्य नही होता ! यदि असाध्य होता भी है तो अन्तिम क्षणो तक उसका उपचार तो किया ही जाता है ।

"रोग असाध्य न होते तो लोग मृत्यु भाजन न बनते और जो रोग असाध्य होते हैं उनका उपचार सुधाई नही देता ।"

"पर क्या मालूम आपने रोग का उपचार न करके यूं ही उसे असाध्य मान लिया हो ।"

"पथिक को स्वय अपनी शक्ति और परिस्थितियो का ज्ञान होता है। जब वह थक जाता है, तो वह सुस्ताने के लिए किसी वृक्ष की छांव खोजता है, और जब दूर-दूर तक वृक्ष न दिखायी दे तो आहे भरने के अतिरिक्त और क्या कर सकता है वह ।"

पुरुषोत्तम की बांछे खिल गयी। उसने उल्लसित होकर कहा —"भाभी ! चाह हो राह मिल ही जाती है । आपको सहारे की आवश्यकता है मैं यह जानता ही हूं और चाहता हूं कि आप इस के लिए साहस से काम लेकर आगे बढे । ससार से सहारे लोप नही हो गए ।"

यशा कुछ उद्विग्न हो गयी, उसने सँभल कर कहा—"मेरी बात को गलत न समझो, सम्भव है मैं ही अपने को ठीक प्रकार से व्यक्त न कर पायी हूं । मेरे कहने का तात्पर्य यह बिल्कुल नही है कि मुझे सहारे की आवश्यता है और सहारा नही मिल रहा। वरन् मैं कहना यह चाहती थी कि मेरा सहारा ससार से उठ चुका है, और अब मेरे पथ

पर दूर-दूर तक कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं जिसकी छाँव में मैं सुस्ता सकूं। न मुझे किसी वृक्ष की छाँव में सुस्ताने का अधिकार ही रह गया है। मुझे चलते जाना है और किसी प्रकार जीवन के अन्तिम छोर पर पहुँच कर ही विश्राम करना है। इस बीच थकावट आयेगी सुस्ताने को भी चाहेगा पर अपने प्राण पर सन्तोष करके आहें भरते भरते जैसे तैसे मुझे ग्राम हो जाना होगा।"

'सहारा प्राप्त करने का आपका अधिकार जिस समाज ने छीन लिया है उसके विचार की आप चिन्ता क्यों करती हैं जो समाज आश्रय नहीं दे सकता आप के किसी काम नहीं आता आप के रास्ते में बाधाएँ खड़ी करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता उस समाज के नियमों की आपको इतनी चिन्ता क्यों है?' —पुरुषोत्तम ने प्रश्न किया।

इस समाज में हम स्वास लेते हैं इस समाज के बीच हमे रहने उठने बैठने और समाज के उत्तरायण में सहयोग दे कर अपना उचित भाग प्राप्त करने की लालसा रहती है उसके नियमों का पालन करना भी हमारा कर्तव्य है। कर्तव्य अधिकार से पहले है। —यशा बोली। 'आश्चर्य है आप समाज की चिन्ता में अपनी मनोकामनाओं का गला घोंट देना चाहती हैं।

यशा ने क्षोभता से भ्रम निवारणार्थ कहा— 'मेरी ऐसी कोई मनोकामना नहीं है जिसका समाज के कारण गला घोटना पड़ता हो।"

'मैं आपका आशय नहीं समझ पाया।'

पति की मृत्यु के उपरान्त स्त्री के लिए उसके सास-स्वसुर माता-पिता और योग्य पुत्र ही सहारा होते हैं—यशा ने भाव व्यञ्जना के लिए शब्दों पर ज़ोर देते हुए कहा—किन्तु मेरे लिए उनमें से एक भी सहारा नहीं है और न मात्र इनमें से किसी सहारे की मनोकामना ही की जा सकती है। कामना या इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ कभी अवश्य कसकती है। भाग्य की इतनी अक्षम्य विडम्बना ही मेरे

अन्तर की पीड़ा का कारण है और कपिल की मूर्खता, विद्याध्ययन के प्रति उदासीनता भविष्य के अन्धकारमय रूप को सामने ला खड़ा करती है अत पीड़ा और भी गहरी हो जाती है।"

पुरुषोत्तम ने मन ही मन कहा— 'खोदा पहाड़ निकला चूहा।"

फिर भी कदाचित् बातचीत को जारी रखने के अभिप्राय से ही उसने कहा—"भाभी। मुझे भी अपने जीवन में कुछ रिक्तता-सी अनुभव होती है। ऐसा लगता है मानो मेरा जीवन अपूर्ण है।"

आश्चर्य प्रकट करते हुए यशा बोली—"ऐसा क्यों?'

"अकेला जो हूँ।'

"तो विवाह क्यो नही कर लेते। मुझे तो आश्चर्य होता है यह देखकर कि तुम अभी तक अविवाहित ही हो।"

"विवाह तो जीवन का पवित्र बन्धन होता है। हृदय जिस बन्धन को स्वीकार न करे वह अप्रिय होता है, बल्कि वही बन्धन, बन्धन दिखायी देता है। अत अपने हृदय के सूत्र को दूसरे हृदय से जोड़ते समय बहुत सोच-विचार करना पड़ता है। जो हृदय की गहरायी तक उतर सके मुझे ऐसी स्त्री की आवश्यकता है। सच मानो मैं आप जैसे उच्च विचारो की स्त्री चाहता हूँ।"—बड़े यत्न से पुरुषोत्तम ने अपनी इच्छा प्रगट की।

परन्तु यशा के निष्कपट और पवित्र हृदया को कोई सन्देह न हुआ हुआ। वह बोली—"मैं कोई आदर्श तो नही हूँ।"

"आप तो देवी हैं। जिसे आप जैसी नारी मिले उससे अधिक भाग्यशाली इस ससार मे भला कोई हो सकता है?"—

"किन्तु मुझ जैसी नारी यदि किसी के सौभाग्य का कारण बन सकती होती तो फिर आज मेरी मांग मे सिन्दूर न होता? न जाने पूर्व जन्म के किन पापो का भार है मेरे सिर पर। मुझ जैसी भाग्यहीना

को आदर्श मानना तो आदर्श का ही उपहास करना है। —इतने ही शब्दों में कथा ने अपने हृदय की सारी व्यथा पिरोदी।

आप ऐसा कहकर अपने पर अन्याय न करें—पुरुषोत्तम ने कहा—मेरे हृदय में आप का जो उच्च स्थान है वह न किसी को प्राप्त हुआ और न हो।''

कथा पुरुषोत्तम की बात पर मुस्कराई पर उसके मुरझाए मुख कमल पर लज्जा की भी झलक थी। कहने लगी— 'मेरे प्रति तुम्हारे ऐसे भाव हैं अहो भाग्य! पर स्नेह क्या ही ऐसा है अपने प्रिय जनों में खोट किसे दिखायी दिया करता है ?'

'तो क्या मैं भी आपको अच्छा लगता हूँ ?'

'हाँ बुरे तो नहीं लगते। मैं तो तुम्हें अपने भ्राता के समान स्नेह करती हूँ और तुम्हारे निःस्वार्थ और पवित्र स्नेह एवं स्वच्छ व्यवहार ही ने तो मुझे ऐसा मानने—को अनुप्राणित किया है फिर बुरे लगने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।'

कथा की यह बात सुनते ही मानो पुरुषोत्तम रूपी अम्बु की आशाओं पर तुषारापात हुआ। जैसे उसके हृदय में किसी बिच्छू ने डंक मारा हो। वह परेशान ही गया और उसको मन स्थित उसके बदन पर झलक आयी। कथा ने चेहरे का रंग उड़ते देख कर पूछा— यह तुम्हें क्या हुआ ?'

कृत्रिम मुसकान लाने का प्रयत्न करते हुए पुरुषोत्तम ने कहा— नहीं आभी कुछ भी तो नहीं! यूं ही एक बात ध्यान आ गयी।''

उस समय उसके चेहरे का रूप और भी विकृत हो गया।

उद्विग्न होकर कथा ने पूछा— 'क्या बात? ऐसी कौनसी बात है जो हठात तुम्हारे मन में घुमी और तुम्हारा रंग ही उड़ गया।''

राह में बात-बातें अनायास ही सिंह का मुकाबला हो जाये तो

जो दशा उस समय व्यक्ति की हो जाती है, वही दशा हुई उस समय पुरुषोत्तम की। किन्तु शीघ्र ही वह सँभल गया और बोला—"मन म यह विचार आगया कि इतनी महान विचारवती स्त्री को इतना क्लेश नियति ने क्यों दिया? आप मेरे सम्बन्ध म इतने उच्च विचार रखती हैं, इतना स्नेह है आपको और मे ? मैं आपके लिए क्या कर रहा हूँ कुछ भी तो नही।"

यशा मौन रह गयी। मानो बुद्धि की कसौटी पर परख कर देख रही हो पुरुषोत्तम के उत्तर को, कि कहा तक यह सच हो सकता है।

थोडी देर के लिए कमरे मे पूर्ण निस्तब्धता रही और फिर यशा उठी और उसने इधर-उधर उलट-पलट करके कुछ कपडे एकत्रित किए और उन्हे एक साथ एक पोटली के रूप मे बांध कर पुरुषोत्तम को देती हुई बोला—"लालाजी! यह बात आपको मेरी मनानी हो होगी। आप इन्हे ले जाइये। कपिल बहुत हठी है वह आपके लाए इन वस्त्रो को बिल्कुल न पहनेगा और यह यहाँ पडे-पडे बेकार खराब हो जायँगे।"

पुरुषोत्तम आश्चर्य चकित रह गया। वह नही सोच पाया कि यशा ने अनायास ही वस्त्रो को वापिस क्यो कर दिया। कही यह इस समय की वार्ता का तो दुष्प्रभाव नही है? यह सोचकर उसने कहा—"भाभी यदि मुझ मे ऐसी कोई भूल हुई हो जिससे रुष्ट होकर आप यह कपडे वापिस करने लगी, तो—मै उस के लिए बारम्बार क्षमा याचना करता हूँ।"

यशा क स्वाभाविक हँसी हँसते हुए बोली—"कैसी बात करते हो? मै तुम्हारी किस बात से रुष्ट हो सकती हूँ। तुम्हारी ओर मे आज तक ऐसी कोई भी बात नही हुई। और यदि कोई भूल भी हो जाती तो क्या मै कपिल को क्षमा नही कर देती। फिर तुम्हारी ही भूल क्यो अक्षम्य हो जाती?"

"तो फिर मै यह वस्त्र कदापि न लेजाऊँगा।"

'लालाजी ! व्यर्थ यहाँ पड़े रहेंगे। इस से भला क्या लाभ आपके पास रहेंगे तो कदाचित किसी उपभोग में आजाएँ।

"नहीं भाभी ! यह मेरे भला किस मतलब के इन्हें तो आपको रखना ही होगा।"

इतना कहकर पुरुषोत्तम उठ खड़ा हुआ और जाते-जाते बोला–'भाभी मैं फिर आऊंगा। कोई भूल हो गयी हो तो अवश्य ही क्षमा करें।"

यमा परेशान थी वह वस्त्रों को अपने पास नहीं रखना चाहती थी। उसने पुनः आग्रह किया और जब समस्त आग्रह और कहा सुनी व्यर्थ गयी तो उसने कहा–लालाजी ! तुमने मेरी तनिक सी बात ठुकरादी इस का मुझे दुःख है।

पुरुषोत्तम पर इस बात का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर न हुआ और वह कमरे से बाहर जाने लगा। तब यमा ने उसे रोक कर कहा–हाँ लाला जी ! एक बात तो मैं भूल गयी तुम से कहनी थी तनिक सुनते जाओ।

पुरुषोत्तम लौट आया।

यमा बोली– 'बुरा मत मानना। जिस समाज में रहते हैं उसकी ओर से आँखें मूँदे नहीं रह सकते।'

'आप कहना क्या चाहती हैं ?' पुरुषोत्तम ने जल्दी करते हुए कहा। मानो अब उसे रुकना अच्छा नहीं लग रहा था।

'बात यह है कि मुहल्ले और पास-पड़ोस के लोग तुम्हारे इस प्रकार बार-बार आने-जाने को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।

"तो फिर ?

"मैं यह तो नहीं कह सकती कि यहाँ मत आया करो। निस्वार्थ भाव से सहायता करने वाले व्यक्ति का सहयोग किसे बुरा लगता है

और फिर तुम तो स्वर्गीय पण्डित जी के अनुज समान हो। पर मेरी परिस्थितियो के अनुसार यही अच्छा है कि कभी-कभी मिल जाया करो। बार-बार आते रहने से तुम्हारी मेरी दोनो की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचने की आशका है। फिर मैं तो ठहरी नारी। जो समाज के अत्याचारों को सहते-सहते इतनी क्षीण हो चुकी है कि अत्याचार की मार के पड़ने पर भी मुँह से "आह" तक नही कर सकती।"—यशा ने कहा।

उत्साह पूर्वक पुरुषोत्तम बोला—"लोगो को बकने दो। मेरे रहते आप पर कोई उगॅली उठाकर देख तो ले कच्चा चबा जाऊँगा। आप नही जानती भाभी! मैं कितना भयकर व्यक्ति हूँ। लोग मेरे नाम तक से कापते हैं। जब बाजार से निकलता हूँ तो लोग चुपके-चुपके खुसर-पुसर करते है। कहते हैं यह है वह शम्भू जो किसी के पीछे पड जाये तो वश बेल तक मिटा कर छोडता है।"

आवेश मे आ कर वह क्या भूल कर गया, इसका उसे ध्यान भी न आया, पर यशा ने तुरन्त पूछ लिया—"शम्भू कौन?"

पुरुषोत्तम नाम धारी शम्भू हकला गया—"मैं मेरा मत-लब" अपनी घबराट को छुपाने के लिए उसने समस्त साहस बटोरा और फिर सँभल कर कहा—"भाभी जी। मुझे कुछ लोग शम्भू भी कहते हैं।"

यशा ने अपने माथे पर दाये हाथ की कनिष्ट उँगली दो चार बार मारी, जैसे स्मृति कोप से कोई बात खोज लाना चाहती हो और फिर कुछ क्षण उपरान्त बोली—"शम्भू तो राज पुरोहित शकुनीदत्त के सहयोगी का भी नाम है।"

पहचान लिए जाने के भय से वह कांप उठा। अपने को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करने लगा। उसके ओठो पर ऊष्णता आ गयी बोला—"यह आपको किसने बताया?"

'जब कपिल के पिता रोग-शैया पर थे तभी किसी ने आ कर बताया था कि शकुन्तीदत्त अपने सहयोगी शम्भू के साथ मिल कर पण्डित जी के विरोध में कोई षडयन्त्र रच रहा है। मैंने स्वयं अपने कानों से यह बात सुनी थी। पण्डित जी ने अनेक बार रोग-शय्या पर पड़े-पड़े अपने सहयोगियों द्वारा शम्भू की गति विधियों का पता लगाने प्रयत्न किया था।"—मोती यथा पुरुषोत्तम नाम वाले व्यक्ति के चेहरे पर आते-जाते भावों को पर खेद और चेहरे के उतार चढ़ाव का निरीक्षण कर सचाई पर पहुँचने का प्रयत्न न कर पायी। उसने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया यद्यपि यद्यपि वह स्वयं प्रकट हो चुका था पर यथा को पहचान न पड़ी। वह सीधी सादी नारी की भाँति अपनी बात कहती रही।

शम्भू को जैसे कुछ क्रोध आया उसने कुटिलता पूर्वक हँसते कहा—"अच्छा आप उस शम्भू को कह रही हैं। ठीक है वह बहुत बदनाम आदमी है। पता नहीं आज-कल नगर में है भी या नहीं। मुझे तो शम्भू कह कर लोग चिढ़ाया करते हैं। आप बराबरी के लोगों में जैसे हास-परिहास चला करता है बस उसी भाँति।"

'तो यह बात है"—यथा ने हँसते हुए कहा।

"अच्छा नमस्ते। अब मैं चला।"

और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही वह वहाँ से चला गया।

× × ×

शम्भू सारे दिन परेशान रहा। वह सोचता रहा कि यथा कदाचित् उसे पहचान गयी होगी पहचान भी न गयी हो तो उसे सन्देह तो अब अवश्य हो ही गया है। ऐसी स्थिति में आगे क्या करना होगा। कभी वह सोचता कि यथा इतनी पवित्र हृदया और महान नारी है उसके प्रति कोई भी अन्याय उचित नहीं होगा। बहुत बड़ा पाप होगा न जाने इस पाप के प्रायश्चित स्वरूप उसे कितने दुःख भोगने पड़े अतः

किसी प्रकार इस काम मे हाथ खींच लेना ही उचित है, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि शकुनीदत्त जो आज उसकी जीविका का एक सहारा बना हुआ है किसी प्रकार भी इस काम की अवहेलना सहन न करेगा और सम्भव है उसकी तनिक सी भी इस काम मे लापरवाही शकुनीदत्त मे उसका सम्बन्ध विच्छेद होने का कारण बन जाये तब एक सत्ताधारी से टक्कर होगी और वही होगा जिस की धमकी एक दिन शकुनीदत्त ने स्वय ही दी थी अत जो हो यह अपराध करना ही होगा। पर अपराध हो भी तो कैसे ? यशा की दृष्टि मे सदिग्ध हो जाने के कारण वहाँ अब उसकी दाल कदाचित न गले तब शकुनीदत्त के आदेश का पालन यदि हो तो कैसे ? कभी सोचता अपराध ही करना है तो फिर कपिल का ही वध क्यो न कर डालूँ ? पर यह सोचते ही उसका हृदय काँप जाता। न जाने क्यो अबोध बालक पर हाथ उठाते हुए उसे मानसिक दु ख होता' बल्कि उसकी कल्पना मात्र से वह रोमाचित हो जाता और फिर सोचता कि कपिल का वध भी तो उस सन्नारी के प्राण लेने के समान होगा। जो आज इतनी दुखी है कि प्रत्येक स्वास से साथ 'हाय' निकलती है, वह कैसे इस शोकाघात को सहन कर सकेगी ?

नही, यह बात भी किसी प्रकार उचित नही है, इससे तो अच्छा है कि मैं यशा का ही गला घोट दूँ, उसे दुखो से भी मुक्ति मिल जायेगी और शकुनीदत्त का दिल भी ठण्डा हो जायेगा। क्योकि यशा के मरते ही कपिल सडको पर मारे-मारे फिरते कुत्तो की श्रेणी मे आ जायेगा। ठीक है यशा का ही वध कर डालना चाहिए। ज्यो ही यह निश्चय वह करता, उसका हृदय पुन काँपने लगता। सोचता वह नारी जो उसे भाई के समान स्नेह करती है, जब मुझे वधिक के रूप मे देखेगी तो क्या सोचेगी? क्या पता वह सती है कोई शाप ही दे डाले। कहते हैं सतियो में बहुत शक्ति होती है। कही उसके शाप से मेरा ही सर्वनाश मूर्त्त ही हो गया तो ? फिर कई प्रश्न वाचक चिन्ह उसके सामने मूर्त्त रूप मे

था जाने होंगे। वह सोचता सबय पूर्ति होगी शकुनी दत्त को और फल भोगना होगा अकेले मुझे इस निस्वार्थ अपराध में क्या लाभ? किसी अग्नि में जलना हो तो शकुनी दत्त भी साथ में क्यों न जले। फिर क्या हो? कैसे हो? इन दो प्रश्नों का उत्तर वह नहीं खोज सका। एक जटिल समस्या आगमी को कोई रास्ता सुझाई नहीं देता था जब भी वह कोई अपराध अन्य बात सोचता मत्ता का निष्ठुर सती रूप उसके सामने मूर्तिमान हो जाता।

जब सोचते-सोचते वह थक गया तो शकुनी दत्त के पास जाकर परामर्श लेने की ही बात समझ में आयी और जब उसने सारा वृत्तान्त शकुनी दत्त को सुनाया तो वह बोला— शम्भू! अब योजना में थोड़ा परिवर्तन करना होगा।

शम्भू ने प्रश्न वाचक दृष्टि शकुनीदत्त पर डाली?

शकुनीदत्त उठकर कमरे में इधर से उधर घूमने लगा एक बार आकर शम्भू के पास रुका और कहा—"शम्भू! अब जो कुछ करना है शीघ्र ही कर गुजरना होगा।

शम्भू की गरदन हिली। पर उस के मन में एक बात और उठी —"शीघ्रता में मामला खत्म हो गया तो मत्ता के नाम पर वह जो स्वर्ण मुद्राएँ शकुनीदत्त से वसूल कर लेता है वह आय मारी जायेगी। यह हानि कोई कम तो नहीं है।' अतः उसने प्रगट रूप में कहा— 'शीघ्रता में काम तो नहीं बिगड़ जायेगा?

'नहीं! काम बिगड़ने नहीं दिया जायेगा—विचार मान शकुनी दत्त बोला— मैं समझता हूँ तुम अब उस कसकित नहीं कर पाओगे।

शम्भू की गरदन स्वीकारोक्ति में हिली। मन ही मन कहा— मैं ऐसा करना भी नहीं चाहता।"

बहुत देर तक शकुनी दत्त सोचता रहा और फिर सहसा ही उसने अपने निकट बुलाया। बहुत धीमे स्वर में अपना निश्चय बताया

और बोला—"देखो। आज तुम्हारा थोड़ा सा सहारा काम कर देगा। हां बहुत सावधानी से अपना काम करना।"

'आप का इशारा भी तो होना चाहिए।"

"तुम जाओ मै अपना काम पूरा करूंगा।"

शम्भू ने फिर भी वहां से हटने का नाम न लिया और प० शकुनीदत्त को फिर कुछ मुद्राएँ उमे भेट देनी पडीं।

ज्ञान तन्तु झनझना रहे थे। मस्तिष्क का एक-एक कण कार्य व्यस्त था। अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। कभी शम्भू में राक्षस उभर आता, अपराधी शम्भू सिर उठाता और कहता—"तुझे किसी की पवित्रता अपवित्रता और सुखी और दुखी होने से क्या मतलब। अपराध करना तेरा व्यवसाय है। मजदूरी मिलती है, तू काम करता है। तू तो वह फदा है, जिसे बधिक किसी के गले मे डालकर खीच देता है। रस्सी को क्या मतलब किसी के अपराधी या निरपराधी होने से। तू अपना काम कर, बगुला मछलियो से यारी करेगा तो खायेगा क्या? तुझ पर आज तक किसने दया की जिसका बदला तुझे देना पडे। सारा ससार स्वार्थ के पीछे पागल है, लोग दूसरो के पेट पर लात मारते हैं, फिर तू क्यो शरमाता है। चल वीर की भांति अपना काम कर। पुण्य-पाप के ही चक्कर मे है तो पहले अपना काम कर आया पीछे मन्दिर मे एक मुद्रा चढा आना।"

तत्पश्चात् उसके अन्तर मे मानव-शम्भू अँगडाई लेता और कहता—"शम्भू! तू भी मनुष्य है और तेरे पास भी कोमल हृदय है। सुख और दुख की अनुभूति तेरी भांति अन्य मनुष्यो को भी होती है। यह मत भूल कि इन समस्त अन्यायो का उत्तरदायित्व तुझ पर है, इन का फल तुझे, केवल तुझे भोगना होगा। शकुनीदत्त तुझे मुद्राएँ भले ही बांट दे पर यदि उसे परलोक मे सुख मिले तो तुझे उसमें से कोई भाग नही मिलेगा और तेरे दुख का सत्रहवां भाग भी वह वहन करने को

तैयार न होगा। पगले! कुछ मुद्राओं के लोभ में तू उस स्त्री पर अन्याय करने का साधन बन रहा है जो तुझे बहुत शुभ्र स्नेह करती है? कल जब वह तुझ से तेरे विश्वासघात के लिए जवाब तलब करेगी तू क्या कहेगा? क्या यह कहेगा कि तू केवल मुद्राओं का भूखा है कौड़ियों का फेरा है अथवा बगुला है। छी! छी!! जड़-वस्तुओं और पशु पक्षियों से अपनी तुलना करता है। कितना नीच हो गया है तू। तूने गुरुकुल में इतने दिनों शिक्षा पायी। तेरा विचार है कि तू योग्य है फिर बता कहाँ है तेरी योग्यता। पशु की भाँति एक व्यक्ति के द्वारा हाँके जाने में तू अपनी वीरता समझता है? निर्लज्ज! यदि तुझ में तनिक सी भी मनुष्यता है तो उस नारी को जिसे तू ने भी भाभी कहा है और निस्वार्थ सहयोग का जिसके सामने संकल्प किया है उसके साथ अन्तिम श्वांस तक उसी सम्बन्ध को निभा। उसका पास पवित्र हृदय है एकबार विश्वास पात्र होने पर, एक बार पर भारी समय पर उसका होकर दिखा देने से ही वह जीवन पर्यन्त अपने हृदय की सारी ममता करुणा और स्नेह तुझ पर उड़ेल देगी और अकुनीदत्त! जो केवल तुझे पेशेवर अपराधी और अपना एक अस्त्र मात्र समझता है जब कभी उसे तेरी आवश्यकता नहीं रहेगी ठोकर मारकर तुझे अलग कर देगा। चल उस पवित्र नारी के चरणों में पहुँच कर अपने अपराधों की क्षमा माँग और भविष्य में सज्जनों की भाँति जीवन यापन का निश्चय कर।

तत्क्षण किसी कोने में छुपा दानव हुंकार उठता — अच्छा तो अब सज्जनता का जीवन व्यतीत करने की सूझी है? यह समाज जो तेरे कुकर्म देख चुका है और जो तुझे केवल एक अपराधी के रूप में पहचानता है क्या कभी भी विश्वास कर सकता है कि तू भले आदमियों जैसा व्यवहार भी कर सकता है? क्या राजकीय विधान की नजरें तुझे मुक्त रहने देंगी। पीछे से जब अकुनीदत्त का सहारा छूट जायेगा क्या तू इस प्रकार छाती तानकर चल सकेगा? क्या तुझे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने की छुट्टी मिल सकेगा? और अथा पर तेरी वास्तविकता

खुलेगी, तो क्या वह भविष्य मे तुझ पर विश्वास कर सकेगी ? क्या धोबी का कुत्ता होकर नही रह जायेगा । बावले, जब गेंद आकाश की ओर से भूमि की ओर चलने लगती है तो भूमि पर आकाश ही दम लेती है । तू अपराधो के जगत मे आकर नीचे की ओर चल रहा है और तेरा अन्त नीचे जाकर ही होगा ? अब बीच मे रुककर वापिस जाने का समय नही रहा । अपनी जेब की ओर देख ! कितनी प्यारी वस्तु है यह ? कितनी मधुर झंकार है इनकी । इन से वह सब कुछ मिल सकता है जो तुझे चाहिए ।"

और उसी समय उसका हाथ जेब पर पडा । मुद्राओ मे मधुर सगीत उभरा और वह मधुर शहनाई का सगीत उस के कानो के रास्ते मस्तिष्क एव हृदय पर छा गया । उसके पैरो की गति तीव्र हो गयी और वह यशा के घर की ओर बढता चला गया ।

सामने यशा का द्वार चमक रहा था । मिट्टी से लिपे हुए किवाड, अर्ध नग्न दीवारे और उनके अन्दर है एक पवित्र आत्मा । वह नारी जो पाप से बिल्कुल अनभिज्ञ है आज समाज मे कलकित हो जायेगी । आज लोग उसके मुँह पर थूकेगे । वह आँसू बहायेगी और लोग उस पर हँसेगे । वह गिड-गिडायेगी, लोग उसे धक्के देगे । वह पैर पकडेगी, लोग उसे ठोकर मारेगे । वह सहायता की भीख मागेगी लोग उसको ईट पत्थर मारेगे । और वह असहाय, अबला सडक पर चलने, किसी को मुँह दिखाने लायक न रहेगी । सोचते सोचते उसका मस्तिष्क झन-झना उठा । उसके हृदय की वीणा के तार एक बार ही सब के सब झनझना उठे, उन मे से सगीत का मधुर बोल निकलने की अपेक्षा एक चीत्कार निकला और वह चीत्कार शम्भू के अग-अग पर छा गया । उस के पैर शिथिल पड गए ।

उसी समय उसे ध्यान आया कपिल की बदनाम माँ के साथ वह सडको पर भीख मांगने निकलेगा और लोग उसे गालियां देगे । वह

रोयेगा चिल्लायेगा और वहाँ कोई उसकी ओर आँख उठाकर भी देखने वाला न मिलेगा। और तब वह अपनी माँ से कहेगा।" "उसका मस्तिष्क विचार पथ पर दौड़ता-दौड़ता एक झटके से रुका। हाँ क्या कहेगा वह ? फिर उसने सोचना प्रारम्भ किया। एक ओर से आवाज सी आयी कदाचित अन्तःकरण उत्तर दे रहा था — 'माँ मैं तो पहले ही से सम्पू के पास नहीं फटकता। मैं जानता था वह बुरा आदमी है। वह बदमाश है। पर तुमने मेरी बात न मानी और तुम उस बदमाश के चक्कर में आ गयी। —एक लड़का और उस लोभ भुखा लफंगा और बदमाश समझे ? ओह ! कितना नीच है वे।—मन में यह विचार आना था कि उसके पैर लड़खड़ाए और वह एक दीवार से टकराया। छम से आवाज हुई। उसने ध्यान पूर्वक सुना उस आवाज को। कितनी मधुर ध्वनि थी वह कितनी प्यारी। घूम कर कि कहाँ से आयी है वह आवाज ? फिर एक बार वह दीवार से टकराया और फिर वही ध्वनि गूँज उठी। उसका हाथ अपनी जेब पर गया। उसने देखा की जैब भारी थी वह समझ गया कि जेब की मुद्राएँ बोल रही थी। और तभी उसके पैरों में शक्ति आगई। उसकी छाती तन गई और वह अकड़ कर चलने लगा।

यह उस समय की बात है जब कि सूर्य मानव की अधोगति पर अन्तिम आँसू बहाता हुआ लज्जा के मारे पश्चिम में जा डूबा था और धरा ने शोक प्रदर्शन हेतु काली चादर भाल ली थी। विराम—जल चुका थे। और कुछ लोग भोजन आदि से निवृत्त होकर लाला की दुकान पर बैठे इधर-उधर की बातों में समय काट रहे थे कुछ अपने घरों में भोजन कर रहे थे। कुछ लोग स्वच्छ वस्त्र पहन कर उद्यान की ओर सैर के लिए जाने वाले थे।

सम्पू गली में चला आ रहा था।

ज्यों ही वह मदा के द्वार के सामने पहुँचा। दुकान पर बैठे लोगों की बातों मे अनायास ही पूर्ण विराम लग गया और सब की दृष्टि सम्पू

पर गयो, जो अपने विशेष डील डोल के कारण रात्रि मे और भी भयानक हो जाता था।

शम्भू ने कुण्डी खट-खटाई।

एक बार शम्भू के हृदय मे फिर एक ज्वार आया, उसका हाथ कांपा और उसने सोचा लौट चले वह। यशा के शब्द उस के कोनो में गूंज गए–"मैं तो तुम्हें बहन की भांति स्नेह करती हूँ।" और इन शब्दो के कानो में गूंजते ही एक दम वह पीछे हट गया।

कुछ सोचने लगा और फिर कुछ क्षणो उपरान्त आगे बढा। उसने आगे बढ़कर फिर कुण्डी खट-खटाई। अन्दर से आवाज आयी—"कौन है?"

जी मे आया कि कह्दे पुरुषोत्तम हूँ। दरवाजा खोलो। पर साहस न हुआ।

कुछ ही क्षण बाद यशा ने किवाडो के पीछे से पूछा—"कौन है बोलता क्यो नही।"

उसने एक बार उसकी ओर गृद्ध दृष्टि डाल रहे, उन लोगो की ओर देखा जो दुकान पर एकत्रित थे और फिर तुरन्त बोल उठा—"मैं हूँ पुरुषोत्तम।"

उसकी आवाज मे दम नही था!

"कौन पुरुषोत्तम?"

वह मौन रहा।

"कौन हो बोलते क्यों नही?" यशा ने तनिक ऊँचे स्वर मे किवाडो के पीछे से पूछा।

"मैं हूँ पुरुषोत्तम।"–अबकी बार उसकी आवाज स्वाभाविक थी। कुछ देरी दोनो और मौन रहा। यशा कुछ सोच में पड गई थी।

"भाभी! पट खोलिए।"

"पुरुषोत्तम! तुम्हारा रात्रि को यहाँ आना ठीक नहीं। प्रात' आना। यशा ने साहस पूर्वक कहा।

'मुझे बहुत आवश्यक काम है। —धीमे स्वर में शम्भु बोला।

"क्या काम है?"

'द्वार खोलो तो बताऊं

'ऐसा क्या आवश्यक काम आन पड़ा?"

"भाभी! जल्दी करो।

"बुरा न मानना लालाजी। इस समय तुम्हारा वापस चला जाना ही ठीक है।"

'बस एक क्षण के लिए खोल दीजिए।" विनय के स्वर में वह बोला! यशा असमंजस में पड़ गयी।

"भाभी! मैं एक मुसीबत में फँस गया हूँ। जल्दी पट खोलो। धीमे स्वर में परन्तु तीव्र गति से उसने कहा।

और तुरन्त यशा ने द्वार खोल दिया।

परन्तु प्रतिबिम्ब की भाँति यशा द्वार खोलकर कमरे की ओर नहीं मुड़ी। वह वहीं खड़ी रही पूछा- क्या बात है लालाजी!

शम्भु तेजी से यशा को धकेलता हुआ अन्दर चला गया। और घबराये हुए से स्वर में बोला—भाभी! शीघ्र द्वार बन्द करलो। कहीं वे न आजायें।

'कौन?" आश्चर्य चकित यशा बोली।

'भाभी! कुछ गुण्डे मेरा पीछा कर रहे हैं।'

क्यों बात क्या हुई?

'मैं अभी ही सब कुछ बताए देता हूँ।"

और स्वयं ही दौड़कर किवाड़ बन्द कर दिए। यशा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे?

पर गयी, जो अपने विशेष डील डोल के कारण रात्रि मे और भी भयानक हो जाता था ।

शम्भू ने कुण्डी खट-खटाई ।

एक बार शम्भू के हृदय मे फिर एक ज्वार आया, उसका हाथ काँपा और उसने सोचा लौट चले वह । यशा के शब्द उस के कानो में गूँज गए–"मैं तो तुम्हें बहन की भाँति स्नेह करती हूँ ।" और इन शब्दो के कानो मे गूँजते ही एक दम वह पीछे हट गया ।

कुछ सोचने लगा और फिर कुछ क्षणो उपरान्त आगे बढ़ा । उसने आगे बढकर फिर कुण्डी खट-खटाई । अन्दर से आवाज आयी–"कौन है ?"

जी मे आया कि कहदे पुरुषोत्तम हूँ । दरवाजा खोलो । पर साहस न हुआ ।

कुछ ही क्षण बाद यशा ने किवाडो के पीछे से पूछा—"कौन है बोलता क्यो नही ।"

उसने एक बार उसकी ओर गृद्ध दृष्टि डाल रहे, उन लोगो की ओर देखा जो दुकान पर एकत्रित थे और फिर तुरन्त बोल उठा—"मैं हूँ पुरुषोत्तम ।"

उसकी आवाज मे दम नही था !

"कौन पुरुषोत्तम ?"

वह मौन रहा ।

"कौन हो बोलते क्यों नही ?" यशा ने तनिक ऊँचे स्वर मे किवाडो के पीछे से पूछा ।

"मैं हूँ पुरुषोत्तम ।"–अबकी बार उसकी आवाज स्वाभाविक थी । कुछ देरी दोनो और मौन रहा । यशा कुछ सोच में पड गई थी ।

"भाभी ! पट खोलिए ।"

शम्भू तेजी से कमरे मे चला गया और यशा उसके पीछे उद्विग्न और घबराई हुई पहुँची।

"क्या बात है लालाजी! तुम कुछ बताते क्यो नही ?"

"तनिक दम तो लेने दो भाभी! अभी सब कुछ बताए देता हूँ।"—हाफने का स्वाँग करते हुए शम्भू ने कहा।

यशा के हृदय की धडकनें तीव्र होती जा रही थी। वह एक दम घबरा गयी थी।

"भाभी! आज सारी रात मुझे आपके यहा ही रहना होगा।"

"पहले मुझे बताओ तो सही, बात क्या है ?"

"पहले अपना नाम और काम बताओ फाटक तभी खुलेंगे।" वीरांगना की भाँति यशा ने कहा।

दूसरी ओर खुसर-फुसर होने लगी। एक बोला-तुम्हारे घर में कौन है?"

"हम जानना चाहते हैं।" गरज कर किसी ने कहा।

"मेरे घर मे तुम्हें क्या मतलब?" यशा ने भी गर्जना की।

"मतलब कैसे नहीं? तुम यहाँ वेश्यावृत्ति नहीं कर सकतीं।"

बाहर से किसी का तेज स्वर सुनायी दिया।

यशा के हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। वह सहम गयी और फिर पट खोल दिए। देखा सामने बहुत से लोग खड़े हैं। एक बार भीड़ उसे धक्का देती हुई भीतर घुस गयी।

भीड़ में से एक व्यक्ति यशा के सामने पहुँच कर बोला— तुम्हारे घर में इस समय कौन है?"

"कपिल के चाचाजी।" साहस पूर्वक उसने कहा।

एक व्यक्ति कुटिलता पूर्वक अट्टहास करता हुआ बोला— कपिल का चाचा या तुम्हारा या ......

"चुप रहो मूर्ख! किसी पर लांछन लगाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती?— यशा ने कड़क कर पूछा।

लज्जा मुझे आयेगी या तुझे, घर में एक बदमाश घुसा रक्खा है और उलटी बातें बनाती है।— उस व्यक्ति ने क्रुद्ध होकर कहा।

यशा का रोम रोम जल उठा उसने क्रोध वश एक चाँटा खींच मारा। "निर्लज्ज!" चीखकर यशा बोली।

फिर तो सब लोग चारों ओर से यशा को लिपट गए। कोई कुछ कहता और कोई कुछ। एक व्यक्ति सबको धकेलता हुआ आगे बढ़ा और गरज कर बोला—सच सच बता कौन है घर मे?"

शम्भू तेजी से कमरे मे चला गया और यशा उसके पीछे उद्विग्न और घबराई हुई पहुँची।

"क्या बात है लालाजी! तुम कुछ बताते क्यो नही?"

"तनिक दम तो लेने दो भाभी! अभी सब कुछ बताए देता हूं।"—हाफने का स्वांग करते हुए शम्भू ने कहा।

यशा के हृदय की धडकनें तीव्र होती जा रही थी। वह एक द घबरा गयी थी।

"भाभी! आज सारी रात मुझे आपके यहा ही रहना होगा।

"पहले मुझे बताओ तो सही, बात क्या है?"

"कुछ गुण्डे • "

और उमी समय बडे जोर से द्वार खटखटाने की आवाज हुई खट-खट-खट की ध्वनि एक बार आरम्भ हुई तो होती ही रही।

"लो भाभी! वे लोग आगए। मुझे बचाओ।"

यशा बहुत घबरा गयी और घबराहट में ही उसने अपने कु वस्त्र उसके ऊपर डाल कर उसे अच्छी तरह से ढाँप दिया और व द्वार खोलने चली।

अब बहुत से लोगो की आवाज आने लगी थी। किवाड खोल पट खोलो नही तो हम तोड देंगे।"

अन्तिम चेतावनी सुनकर यशा बहुत घबरा गयी और दौ कर द्वार के निकट गयी। उसने समस्त साहस बटोर कर ऊचे स्व मे पूछा—"कौन है?"

"द्वार खोलो।"

"क्यो?"

इस बात का अभी ही पता चल जायेगा। पहले पट खोलो।" —किसी की कड़कती आवाज आई।

"पहले अपना नाम और काम बताओ फाटक तभी खुलेंगे। वीरांगना की भाँति मधा ने कहा।

दूसरी ओर खुसर-फुसर होने लगी। एक बोला-तुम्हारे घर में कौन है ?"

'तुम जानना चाहते हैं।' गरज कर किसी ने कहा।

'मेरे घर मे तुम्हें क्या मतलब ?" मधा ने भी गर्जना की।

'मतलब कैसे नहीं ? तुम यहां बेशमाहति नहीं कर सकती।

बाहर से किसी का तेज स्वर सुनायी दिया।

मधा के हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। वह सहम गयी और फिर पट खोल दिए। देखा सामने बहुत से लोग खड़े है। एक भारी भीड़ उसे धक्का देती हुई अन्दर घुस गयी।

भीड़ में से एक व्यक्ति मधा के सामने पहुँच कर बोला- तुम्हारे घर में इस समय कौन है ?"

"कपिल के बाबाजी। साहस पूर्वक उसने कहा।

एक व्यक्ति कुटिलता पूर्वक अट्टहास करता हुआ बोला— कपिल का बाबा या तुम्हारा या" "

'चुप रहो मूर्ख ! किसी पर लांछन लगाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?-' मधा ने कड़क कर पूछा।

लज्जा मुझे आयेगी या तुम्हे, घर मे एक बदमाश घुसा रक्खा है और उलटी बातें बनाती है।-"उस व्यक्ति ने क्रुद्ध होकर कहा।

मधा का रोम रोम जल उठा उसने क्रोध वश एक चाँटा खींच मारा। निर्लज्ज ! चीखकर मधा बोली।

फिर तो सब लोग चारों ओर से मधा को लिपट गए। कोई कुछ कहता और कोई कुछ। एक व्यक्ति सबको धकेलता हुआ आगे बढ़ा और गरज कर बोला-सच सच बता कौन है घर में ?"

शम्भू तेजी मे कमरे में चला गया और यशा उसके पीछे उद्विग्न और घबराई हुई पहुँची।

"क्या बात है लालाजी! तुम कुछ बताते क्यो नही?"

"तनिक दम तो लेने दो भाभी! अभी सब कुछ बताए देता हू।"–हाफने का स्वांग करते हुए शम्भू ने कहा।

यशा के हृदय की धडकनें तीव्र होती जा रही थी। वह एक दम घबरा गयी थी।

"भाभी! आज सारी रात मुझे आपके यहा ही रहना होगा।"

"पहले मुझे बताओ तो सही, बात क्या है?"

'कुछ गुण्डे "

और उसी समय बडे जोर से द्वार खटखटाने की आवाज हुई। खट-खट-खट की ध्वनि एक बार आरम्भ हुई तो होती ही रही।

"लो भाभी! वे लोग आगए। मुझे बचाओ।"

यशा बहुत घबरा गयी और घबराहट में ही उसने अपने कुछ वस्त्र उसके ऊपर डाल कर उसे अच्छी तरह से ढाँप दिया और वह द्वार खोलने चली।

अब बहुत से लोगो की आवाज आने लगी थी। किवाड खोलो, पट खोलो नही तो हम तोड देगें।"

अन्तिम चेतावनी सुनकर यशा बहुत घबरा गयी और दौड कर द्वार के निकट गयी। उसने समस्त साहस बटोर कर ऊचे स्वर मे पूछा–"कौन है?"

"द्वार खोलो।"

"क्यो?"

इस बात का अभी ही पता चल जायेगा। पहले पट खोलो।" –किसी की कड़कती आवाज आई।

कड़क कर कहा– देखो ! कोई भी मेरे पास आया तो मैं उसे बिना यमलोक पहुँचाए नहीं मानू गा।"

भीड़ के सभी लोग सहम गए और सभी एक एक करके कमरे के बाहर हो गए। मां अभी तक कानों को मींचे खड़ी थी। एक व्यक्ति ने उसका हाथ झटकते हुए कहा– "बस देख उसे जिसे तू कपिल का बाप बताती है। यह वह व्यक्ति है जिसने आज तक न जाने कितने अपराध किए हैं। कई वर्ष कारावास का दण्ड भोग चुका है। नगर के कुख्यात अपराधी को अपने घर मे रात्रि के समय बुलाने का क्या अर्थ है ?"

पहले की बात समाप्त होते ही दूसरा बोल उठा– 'तेरी सेज पर तेरी साड़ी ओढ़े शम्भू लेटा है और तू उसे छुपा कर आवभगतो कमने चली थी। बड़ा बोल आया था पहले तो। बोल यह कौन है तेरा ?

तीसरा हाथ नचाते हुए बोला– अभी शम्भू ही अकेला थोड़े ही है जो इसके घर में इसका एक रात का राजा बना है इस रानीजी के पास तो न जाने कितने आते हैं। भगवान की कसम सारे नगर के गुन्डे लफंगे उतरते हैं इस रंग महल मे।"

कितने ही लोगों के मुख से निकला 'हाँ जी अवश्य ही आते होंगे। जो स्त्री एक बार पतित हो जाती है उसे एक पर सन्तोष थोड़े ही होता है।

एक ने दूसरे को सम्बोधित करते हुए कहा– क्या कहते हो लाला ! क्या इस मुहल्ले की आबरू इसी प्रकार बिकती रहेगी ? क्या इस मुहल्ले मे और दूसरे से पापाचार चलता रहेगा ?"

एक और बोला–"पाप जब बढ़ता है तो एक घर से दूसरे में तीसरे में इस प्रकार अपने पैर पसारता ही चला जाता है। लोगों को मुहल्ले की बहू-बेटियों की बिगड़ते रहने देना है तो चलो अपने घर की राह लो अन्यथा कुछ करना ही होगा।"

"कपिल के चाचाजी ।"

"वह बदमाश शम्भू, जो कुख्यात गुण्डा है, कपिल का चाचा कब से हो गया ?"

—एक व्यक्ति ने पूछा ।

दूसरे ने कहा—"अपने व्यभिचार को छुपाने का प्रयत्न करती है । हम बहुत दिनों से तुझे देख रहे हैं । घर क्या है वेश्यालय है ।"

"पण्डित काश्यप के नाम को कलंकित करने वाली दुष्टा ! क्या इस मुहल्ले में लुच्चों और गुण्डों का अड्डा बनाना चाहती है ।"—तीसरे ने कहा चौथा उससे भी तेज स्वर में बोला—"व्यभिचारिणी ! लाज बेच-बेचकर खाने से तो अच्छा था तू भीख मांग लेती ।"

"निकाल अपने उस प्रेमी को, कहाँ छुपा रक्खा है ।" पाँचवां बड़का ।

"कलंकिनी ! अपने कुल की नाक कटाने लज्जा नहीं आयी ।"

"पापिन ! सारे मोहल्ले की युवतियों को भ्रष्ट करने का साहस कर रही है ।"

"व्यभिचारिणी ! दिन-दिन भर पास रखने पर भी पेट नहीं भरा, अब रात को भी बुला लिया !"

चारों ओर से लोग अपनी अपनी बात कह रहे थे, जी भर कर गालियां द रहे थे, एक भी ऐसा नहीं था, जो उसका पक्ष लेता उस समय यशा ने दोनों हाथों से अपने कान भींच लिए थे । पर हाथों से कान बन्द कर लेने से न आवाजें उन तक पहुँचने से रुकीं और न कहने वालों को ही दया आई । यशा की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह निकली ।

भीड़ बढ़ती रही और फिर सब लोगों ने शम्भू को कमरे में खोजने का निश्चय किया । शम्भू अभी तक यशा की साड़ी ओढ़े लेटा था । कमरे में भीड़ आते ही वह उठ खड़ा हुआ । उसने

कड़क कर कहा— देखो ! कोई भी मेरे पास आया तो मैं उसे बिना यमलोक पहुँचाए नहीं मानूँगा।"

भीड़ के सभी लोग सहम गए और सभी एक एक करके कमरे के बाहर हो गए जबकि अभी तक कानों को मीचे खड़ी थी। एक व्यक्ति ने उसका हाथ झटकते हुए कहा— 'बस देख उसे जिसे तू अपना बाप बताती है। यह वह व्यक्ति है जिसने आज तक न जाने कितने अपराध किए हैं। कई वर्ष कारावास का दण्ड भोग चुका है। नगर के कुख्यात अपराधी को अपने घर में रात्रि के समय छुपाने का क्या अर्थ है ?"

पहले की बात समाप्त होते ही दूसरा बोल उठा— 'तेरी सेज पर तेरी साड़ी ओढ़े अब्बू लेटा है और तू उसे छुपा कर सावित्री बनने चली थी। बड़ा बोल आया था पहले तो। बोल यह कौन है तेरा ?

तीसरा हाथ नचाते हुए बोला— अभी अब्बू ही अकेला थोड़े ही है जो इसके घर में इसका एक रात का राजा बना है। इन रानीजी के पास तो न जाने कितने आते हैं। भगवान की कसम सारे नगर के गुण्डे आकर उतरते हैं इस रंग महल में।"

कितने ही लोगों के मुख से निकला 'हाँ भी अवश्य ही आते होंगे। जो स्त्री एक बार पतित हो जाती है उसे एक पर सन्तोष थोड़े ही होता है।"

एक ने दूसरे को सम्बोधित करते हुए कहा— क्या कहते हो लाला ! क्या इस मुहल्ले को पाकर इसी प्रकार बिगाड़ती रहेगी ? क्या इस मुहल्ले में और दूसरे से पापाचार चलता रहेगा ?"

एक और बोला—"पाप जब बढ़ता है तो एक घर से दूसरे में तीसरे में इस प्रकार अपने पैर पसारता ही चला जाता है। सोचलो मुहल्ले की बहू-बेटियों को बिगड़ने देना है तो चलो अपने घर भी रख लो अन्यथा कुछ करना ही होगा।

"कपिल के चाचाजी।"

"वह बदमाश शम्भू, जो कुख्यात गुण्डा है, कपिल का चाचा कब से हो गया?"

—एक व्यक्ति ने पूछा।

दूसरे ने कहा—"अपने व्यभिचार को छुपाने का प्रयत्न करती है। हम बहुत दिनों से तुझे देख रहे हैं। घर क्या है वेश्यालय है।"

"पण्डित काश्यप के नाम को कलंकित करने वाली दुष्टा! क्या इस मुहल्ले में लुच्चों और गुण्डों का अड्डा बनाना चाहती है।"—तीसरे ने कहा चौथा उससे भी तेज स्वर में बोला—"व्यभिचारिणी! लाज बेच-बेचकर खाने से तो अच्छा था तू भीख मांग लेती।"

"निकाल अपने उस प्रेमी को, कहाँ छुपा रक्खा है।" पाँचवा कड़का।

"कलंकिनी! अपने कुल की नाक कटाते लज्जा नहीं आयी।"

"पापिन! सारे मोहल्ले की युवतियों को भ्रष्ट करने का साहस कर रही है।"

"व्यभिचारिणी! दिन-दिन भर पास रखने पर भी पेट नहीं भरा, अब रात को भी बुला लिया!"

चारों ओर से लोग अपनी अपनी बात कह रहे थे, जी भर कर गालियाँ दे रहे थे, एक भी ऐसा नहीं था, जो उसका पक्ष लेता उस समय यशा ने दोनों हाथों से अपने कान भींच लिए थे। पर हाथों से कान बन्द कर लेने से न आवाजें उन तक पहुँचने से रुकी और न कहने वालों को ही दया आई। यशा की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली।

भीड़ बढ़ती रही और फिर सब लोगों ने शम्भू को कमरे में खोजने का निश्चय किया। शम्भू अभी तक यशा की साड़ी ओढ़े लेटा था। कमरे में भीड़ आते ही वह उठ खड़ा हुआ। उसने

दहाड़ कर कहा— देखो ! कोई भी मेरे पास आया तो मैं उसे बिना यमलोक पहुँचाए नहीं मानूँ गा।

भीड़ के सभी लोग सहम गए और सभी एक एक करके कमरे के बाहर हो गए, यद्यपि अभी तक कानों को नीचे खड़ी थी। एक व्यक्ति ने उसका हाथ झटकते हुए कहा— चल देख उसे जिसे तू नरसिंह का बाबा बताती है। यह वह व्यक्ति है जिसने आज तक न जाने कितने अपराध किए हैं। कई वर्ष कारावास का दण्ड भोग चुका है। नगर के कुख्यात अपराधी को अपने घर में रात्रि के समय बुलाने का क्या अर्थ है?

पहले की बात समाप्त होते ही दूसरा बोल उठा— 'तेरी सेज पर तेरी साड़ी ओढ़े शम्भू लेटा है और तू उसे छुपा कर सावधान्ता बनने चली थी। बड़ा क्रोध आया था पहले तो। बोल यह कौन है तेरा?

तीसरा हाथ नचाते हुए बोला—' अभी शम्भू ही अकेला थोड़े ही है जो इसके घर में इसका एक रात का राजा बना है इन रानीजी के पास तो न जाने कितने आते हैं। भगवान की कसम सारे नगर के गुण्डे मचले उतरते हैं इस रंग महल में।"

कितने ही लोगों के मुख से निकला "हाँ जी अवश्य ही आते होंगे। जो स्त्री एक बार पतित हो जाती है उसे एक पर सन्तोष थोड़े ही होता है।"

एक ने दूसरे को सम्बोधित करते हुए कहा— क्या कहते हो लाला! क्या इस मुहल्ले को आवारा इसी प्रकार बिगाड़ते रहेंगे? क्या इस मुहल्ले में और दूसरे से पापाचार चलता रहेगा?"

एक और बोला—"पाप जब बढ़ता है तो एक घर से दूसरे में तीसरे में इस प्रकार अपने पैर पसारता ही चला जाता है। सोचलो मुहल्ले की बहू-बेटियों को बिगड़ते रहने देना है तो चलो अपने घर की राह लो अन्यथा कुछ करना ही होगा।"

"कपिल के चाचाजी।"

"वह बदमाश शम्भू, जो कुख्यात गुण्डा है, कपिल का चाचा कब से हो गया ?"

—एक व्यक्ति ने पूछा।

दूसरे ने कहा—"अपने व्यभिचार को छुपाने का प्रयत्न करती है। हम बहुत दिनो से तुझे देख रहे हैं। घर क्या है वेश्यालय है।"

"पण्डित काश्यप के नाम को कलकित करने वाली दुष्टा। क्या इस मुहल्ले में लुच्चो और गुण्डो का अड्डा बनाना चाहती है।"—तीसरे ने कहा चौथा उससे भी तेज स्वर मे बोला—"व्यभिचारिणी। लाज बेच-बेचकर खाने से तो अच्छा था तू भीख मांग लेती।"

"निकाल अपने उस प्रेमी को, कहाँ छुपा रक्खा है।" पांचवा कडका।

"कलकिनी। अपने कुल की नाक कटाते लज्जा नही आयी।"

"पापिन। सारे मोहल्ले की युवतियो को भ्रष्ट करने का साहस कर रही है।"

"व्यभिचारिणी। दिन-दिन भर पास रखने पर भी पेट नही भरा, अब रात को भी बुला लिया!"

चारो ओर से लोग अपनी अपनी बात कह रहे थे, जी भर कर गालियाँ दे रहे थे, एक भी ऐसा नही था, जो उसका पक्ष लेता उस समय यशा ने दोनो हाथो से अपने कान भीच लिए थे। पर हाथो से कान बन्द कर लेने से न आवाजे उस तक पहुँचने से रुकी और न कहने वालो को ही दया आई। यशा की आंखो से आंसुओ की अविरल धारा बह निकली।

भीड बढती रही और फिर सब लोगो ने शम्भु को कमरे मे खोजने का निश्चय किया। शम्भू अभी तक यशा की साडी ओढ़े लेटा था। कमरे मे भीड़ आते ही वह उठ खड़ा हुआ। उसने

चलाकर कहती है मैं पवित्र हूँ मैं निरपराधिनी हूँ।" फिर वह सुबकने लगी। 'देखो तिरिया चरित्र! कैसा स्वांग रच रही है। घर में शम्भु को अपनी खाट पर सुला रक्खा है और कहती है सती।'— एक व्यक्ति ने तमक कर कहा।

वह दौड़कर कमरे में जाती है और शम्भु को जो अभी तक मौन और निष्पन्द सा खड़ा था झकझोर कर कहती है— 'लालाजी! इन अन्यायियों को बताओ कि मैं निष्कलंक हूँ। तुम मेरे लिए भाई के समान हो।' आँखों से सावन भादों की झड़ी लगी है बोलते हुए बीच-बीच में उसे हिचकियाँ आती हैं हिचकी लेती है वह बार बार शम्भु को झकझोरती है। पर शम्भु मौन है वह कुछ नहीं बोलता।

तब खिन्न होकर वह बोली— लालाजी! इस समय जब कि यह लोग मुझ अभागिनी पर निराधार आरोप लगा रहे हैं मेरे चरित्र पर अक्षम्य लांछन लगा रहे हैं तुम मौन हो? बोलो बोलो!!

शम्भु फिर भी मौन था निस्तब्ध मानो उसकी जिह्वा को लकवा मार गया हो!

रुदन और चीत्कारों में अपना क्रोध एवं विरोध भर कर उगलने वाली मधा ने अनायास ही शोक और दुःख के मण्डराते बादलों का पल्ला छोड़ा और तड़ित की भाँति कड़की— अब समझी! तुम पुरुषोत्तम के रूप में मुझे धोखा देने वाले शम्भु हो। शम्भु जो अपराधी है नीच है, गुण्डा है। यह सब जाल तुम्हारा बिछाया हुआ है। क्या यही थे वे गुण्डे जिनसे डरकर भागे थे तुम और मेरे घर में आश्रय लेने आये थे? क्या यही था वह स्वांग जो तुमने रचने के लिए निःस्वार्थ सहयोग का जाल बिछाया था। नीच षड़यन्त्रकारी? एक असहाय पीड़ित नारी को बदनाम करने की कायरता करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आयी। मैं नहीं जानती थी कि तुम मानव के रूप में भेड़िये हो। कपिल ठीक

किसीने कहा–"एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है, एक पापी सारी नौका को ले डूबता है। भाई! जानते हो जहां बहू बेटियां धोती का गहना बेच कर खाने लगती हैं, व्यभिचार चलता है, वहां भगवान का कोप टूटता है और वह मुहल्ला, या वह बस्ती नष्ट हो जाती है।"

तेज स्वर में बोलने वाले व्यक्ति ने चिल्ला कर कहा–"मैं कहता हूं यह पापिन इस मुहल्ले मे रही तो हमारी नाक कटा देगी, इस मुहल्ले पर पत्थर बरसेगे। भगवान सब कुछ देखते हैं। शिवजी का तीसरा नेत्र ऐसे ही पापो के प्रसार के समय ही तो खुलता है। कही शिवजी का तीसरा नेत्र खुल गया तो मुहल्ले पर आग बरसेगी।" पता नही कितने पाप किए हैं इसने, कितनी भ्रूण हत्याए की होगी। हे राम! अब इस बस्ती का क्या होगा?" एक ने बहुत दुखित होते हुए कहा।

यशा को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उन लोगो के कण्ठो से निकलते अग्निबाण उसकी हथेलियो को वेधते हुए उसके कानो मे प्रवेश करते जा रहे हैं। उसका रोम रोम जल रहा था और हृदय में उबल रहे अ गारे उसकी आंखो की राह निकल पडने को आतुर थे। उसके आंसुओ का एक एक कण असख्य अ गारो को छुपाये था। एक बार चीख मार कर वह रो पडी और रुंधे हुए कण्ठ से उसने कहा–"मुझ निरपराधिनी पर लांछन लगाने वालो भगवान के कोप से डरो। तुम्हारे भी बहू-बेटियां होगी। तुम्हारी भी किसी बहू बेटी पर मुझ जैसी विपदा आयी होगी। असहाय अबला को अग्निबाणो मे बींधने वालो! सोचो कि किसी विधवा पर व्यर्थ का लांछन लगाना कहां का न्याय है? हे पृथ्वी मां! फट जाओ और मुझे अपनी गोद मे स्थान दो। यहा एक भी ऐसा नही जो मुझ अबला पर दया करे, अन्याय का प्रतिकार करे। मै निरपराधिनी हूं। मैने जीवन पर्यन्त किसी परपुरुष की ओर स्वप्न में भी नजर डाली हो तो मेरा अङ्ग-अङ्ग गल जाये। मैं अपने इकलौते बेटे की शपथ

कभी तुम ने सोचा है ? बाप भाई, पति देवर, ज्येष्ठ सेवक गुरु और बहनोई, कितने ही भिन्न-भिन्न रिश्तों और सम्बन्धों के लोगों पर नारी की दृष्टि जाती है परन्तु क्या उन सब से एक ही प्रकार का सम्बन्ध होता है ? क्या तुम अपनी बहन माँ बेटी और पत्नी को एक स्तर पर रख सकते हो ? क्या यह कहने का साहस कर सकते हो कि अपनी माँ और बहन के अतिरिक्त और जिन स्त्रियों को तुम प्रतिदिन देखते हो उन सब पर तुम्हारी कुदृष्टि ही रहती है क्या उन सब से तुम केवल वासना तृप्ति के लिए ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो ? क्या तुम नारी को इतना नीच समझते हो कि वह जब चाहे जिसके हाथों में अपनी आबरू जाने दे। वह नारी जाति जिसका प्राकृतिक आभूषण है कभी स्वयं पतिता नहीं होती यह पुरुष वर्ग है जो उसे छल कपट बल और लोभ के द्वारा अपनी वासनाओं की ज्वाला में जलाता है। अपने आप पाप और व्यभिचार की अग्नि प्रज्वलित करके अबोध और असहाय नारियों को कलंकित करने वालों ! बोलो तुम्हारे पापों का प्रायश्चित क्या है ? क्या तुम्हारे पाप समाज की ओर दृष्टि का कारण नहीं बन सकते ? स्वयं अनेक स्त्रियों की आबरू लूट लेने का जघन्य दानवी अपराध करने वाले पुरुषों ! तुम्हें तो समाज में प्रत्येक पाप-लीला रचाकर भी सज्जनता पुण्य और धर्म की दुहाई देने और डींग हाँकने का अधिकार है और नारी जो को किसी पर-पुरुष की ओर देखने में भी घबराती है, जिसकी आँख का पानी उसे बाजार में सिर उठा कर चलने से भी रोकता है, जो अपने पति तक के सामने स्वच्छन्दता पूर्वक उठ बैठ नहीं सकती उसे अपने को निरपराधिनी सिद्ध करने का अवसर पाने का भी अधिकार नहीं यह कहाँ का न्याय है ? बिना कोई प्रमाण एकत्रित किए ही तुमने मुझ पर पुण्यसरद लोछनों की झड़ी लगा दी तुम यह भूल गए कि एक मुर्दे चुराने वाले को उस समय तक कोई दण्ड नहीं दिया जाता जब तक साक्षियाँ उसके ऊपर लगे अभियोग को अपराध सिद्ध न कर दें।

कहता था तुम घृणित हो, तुम्हें अपने घर की ड्योढी मे भी पग रखने देना विपत्तियो और कलक को निमन्त्रित करना है।"

भीड एक दम शान्त थी, ध्यान पूर्वक उसके एक एक शब्द को सुन रही थी। यशा के वाग्बाणो की बौछार के बाद भी शम्भू मौन रहा। सिर नीचा किए खडा रहा। वह न तो शकुनीदत्त के आदेशानुसार उल्टे उस पर लांछन लगाने का साहस ही कर पा रहा था और न यशा के जलते हुए शब्दो का कोई उत्तर देने का साहस करता था। एक दम मौन रहा।

बिफरी हुई सिहनी की भाति यशा भीड की ओर पलटी और क्रोध मे जलती हुई आग उगलने लगी। बोली—"पाप और व्यभिचार के नाद उठाने वालो! किसी गुण्डे का किसी के घर मे छलवेश धारण करके प्रवेश कर जाना, धोखा देकर आश्रय लेने की प्रार्थना करके रात्रि मे किसी विपदा की मारी करुणाकारिणी स्त्री के घर मे आ जाना ही क्या उस स्त्री की दुश्चरित्रता का प्रमाण है? बोलो! तुम मे से कौन सा ऐसा है जिसने किसी परायी स्त्री की ओर सतृष्ण नेत्रो से न देखा हो। कौन ऐसा है जिसने जीवन में कोई पाप न किया हो? कौन है तुम म दूध मे धुला हुआ? रात दिन पाप मे लिप्त रहने वालो निस्सहाय विधवा पर लाछन लगाने से पहले अपने हृदय को टटोलो। इतने दिनो से इस मोहल्ले मे रह रही हूँ। मेहनत मजदूरी करके पेट पालती हूँ। तुम मे से किसके आगे मैंने हाथ पसारा? कौन है जो यह कहने का साहस करे कि मैं कभी भी मुहल्ले की गली में सिर ऊँचा करके चली हूँ। कभी किसी पुरुष से बात करते हुए क्या किसी ने मुझे देखा है? और फिर मै तुम सबसे पूछती हूँ कि क्या स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध—वासना तृप्ति के लिए ही हो सकता है? क्या स्त्री और पुरुष बहन-भाई नही हो सकते? कौन कहता है कि नर और नारी के सम्बन्ध—का आधार काम-वासना ही है। स्त्री के पास कितनी दृष्टियाँ होती हैं

मौन रहने वाला नहीं हूँ। तुम सीधे-सीधे यह मुहल्ला नहीं छोड़ोगी तो मैं कल प्रात ही राज दरबार में गुहार करूँगा।"

"ठीक है ठीक है तुम्हें मुहल्ला छोड़ना ही होगा।" चारों ओर से लोग चिल्ला पड़े।

एक ने कहा—"कर दो इसे धम्मू के साथ। बहुत बन के रहे या पत्नी हमें क्या?"

'हाँ हाँ ठीक है— 'सब लोग चिल्ला उठे।

कपिल तब तक जाग उठा था वह एक कोने में खड़ा रो रहा था। सब लोगों को एक ही स्वर में बोलते देख यशा का साहस टूट गया उसके नेत्रों से अश्रुधारा बड़े वेग से बहने लगी। वह बार-बार विनती करने लगी कि उसका संसार में कोई सहारा नहीं वह कहाँ भागती कहाँ रहेगी? उससे इस घर में सिर छुपाने का अधिकार न छीनो। पर वहाँ एक भी ऐसा नहीं था जो उसकी विनती पर कान देता। किसी के मन में करुणा जागृत भी हुई हो तो वह जन समूह के भय से मौन ही रह गया।

'तुम्हें अभी ही इसी समय इस घर से निकलना होगा।' –एक व्यक्ति ने आगे बढ़ कर कहा।

'जानती हो, इस नगर का विधान। पापाचारिणी को काला मुँह करके सारे नगर में घुमाया जाता है और फिर उसे नगर से निष्कासित कर दिया जाता है। बोलो क्या तुम भी यही दण्ड चाहती हो? यदि हाँ तो रहो रात भर, हम प्रात ही राज-दरबार में जा कर फरियाद प्रस्तुत करेंगे। देखें तुम्हें कौन बचाता है?"—एक बूढ़े व्यक्ति ने यशा को सम्बोधित करते हुए कहा।

यशा सिर से पैर तक काँप गयी। वह इस दण्ड की कल्पना कर के ही रोमांचित हो गयी। और अन्त में उसे उसी समय अपने घर को अन्तिम नमस्कार करना ही न स्वीकार करना पड़ा।

माना शम्भू बदनाम है, अपराधी है, पर यह किसी नारी का बेटा और किसी बहन का भाई भी होगा। यदि इसकी सगी बहन इसे अपने घर मे स्थान दे सकती है तो केवल इसलिए कि मैने इसकी मां की कोख से जन्म नही लिया, इसे थोडी देर अपने घर मे आश्रम देना इतना बडा अपराध हो गया कि आप सभी, जिनमे युवा और वृद्ध भी हैं मेरे घर मे मुझे गालियां देने चले आये। क्या नारी को इतना अपमानित करना ही तुम्हारा धर्म है? याद रक्खो नारी जो जननी है, जब तक पीडित रहेगी, वीर सन्तान जन्म न लेगी। जिस शरीर के हृदय से चीत्कार निकालते हो उस शरीर की कोख से वीरता तथा मुसकाने जन्म नही ले सकती।"

यशा की इस प्रकार की गर्जना और तर्कसगत वक्तव्य मे एक बार सब लोग बगले झांकने लगे और कुछ देर पूर्ण निस्तब्धता छायी रही, पर पीछे खडे एक व्यक्ति ने यशा के तर्कों मे बुझती जाती अग्नि को पुन हवा देने के लिए कहा—"वाह जी वाह बाई जी! तुम तो ऐसे उपदेश कर रही हो जैसे हम सब बुद्धू ही हैं और तुम कोई सती हो। तुम्हारे सतीत्व की सारी पोल खुल चुकी है। यह लोग तुम्हारी धमकियो और लच्छेदार बातो मे आ सकते हैं, पर मैने भी धूप मे बाल सफेद नही किए हैं। तुम्हारे घर मे हम ने कभी किसी सज्जन को आते नही देखा। जहां गुड होता है वही मक्खियां पहुँचती हैं जहां गन्दगी होती है, कीडे वही आश्रम लेते हैं। इस बात का क्या जवाब है कि तुम्हारे घर मे एक ऐसा कुख्यात व्यक्ति तुम्हारी खाट पर, तुम्हारी साडी ओढे हुए मिला जिसमे किसी अच्छाई की आशा ही नही की जा सकती। तुम्हारी खाट पर एक लफगा देख कर भी हम तुम्हे लाजवन्ती ही मानें, हमारा भेजा नही फिर गया है। मैं कहता हूँ तुम व्यभिचारिणी हो और हमारे मुहल्ले मे नही रह सकती। यह पाठ किसी और ही मुहल्ले को पढ़ाना। हमे इसकी आवश्यकता नही है। ये लोग भले ही मौन रह जाये, पर मैं

थे एक भी उस के मन में नहीं उठ रहा था। वह कुछ भी नहीं सोच रही थी जैसे उसने न सोचने की कसम खाली हो।

रास्ते में जो देखता वह चकित रह जाता। रात्रि में एक स्त्री जिसके साथ एक लगभग सात आठ वर्ष का बालक है इस समय कहाँ जा रही है? क्या भिखारिन है नहीं उसके वस्त्र कुछ स्वच्छ हैं? तो फिर कौन है यह? देखने वाला सोचता पर किसे क्या पड़ी है कि वह रोक कर उससे उसकी मंजिल का अता-पता पूछे। होगी कोई उसे क्या? यही सोच कर वह सन्तोष कर लेता। पर जब उस की दृष्टि तनिक दूर पर पीछे-पीछे आ रहे शम्भू पर पड़ती तो वह समझ लेता, कोई शिकार है शम्भू का? कहीं से उड़ा कर लाया होगा।

शम्भू आत्म-ग्लानि के मारे दबा जा रहा था कई बार उसकी इच्छा हुई कि वह यशा को रोककर अपने घर ले जाये। कहे कि भाभी! आज की रात मेरे घर व्यतीत कर लो कल जहाँ चाहे चली जाना पर उसका साहस न हुआ। और यशा जिधर को पग ले चले उधर को ही चलती रही।

राज-पुरोहित पं० काश्यप की पत्नी जो कभी पैदल सड़क पर नहीं निकला करती थी आज ठोकरें खाती हुई जा रही थी।

पाँच

युग का पथिक निशि तथा दिनो के दाने चुनता और अपने आँचल मे भरता अपने पद चिह्नो मे इतिहास के पृष्ठ रगता हुआ चलता जाता है। गति का नाम ही जीवन है, और काल पथिक ने इस मूल मन्त्र को अपने हृदयङ्गम कर लिया है। वह चल रहा है, पर उसके ललाट पर न कभी श्रम-कण ही उभरे और न पैरो में कभी शिथिलता ही आयी। चलना ही उसका जीवन है, आगे बढते जाने मे ही उसकी रुचि है और बिना रुके, मजिल की ओर मजिल की आसक्ति में क्षण प्रति क्षण तडपते जाते और कही पडाव डालने तक का लोभ मन में न उभरने देने को ही उसने अपना पवित्र आदर्श मान रक्खा है। कौन जानता है उसकी यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ है उसकी मजिल।

रात-दिन की आँख-मिचौनी, बल्कि यूँ कहिए कि चूहा-बिल्ली की दौड चलती रही किसी ने थकने या पकड में आने, सुस्ताने अथवा निश्चित होकर बैठे रहने का नाम न लिया। ऋतुओ ने रगमच पर आकर अपना अपना पार्ट अदा किया और परिवर्तनो एवं निरन्तर गतिशीलता, विकास और विनाश, बल्कि विनाश तथा विकास का चक्र यूँही चलता रहा। अकुर उगे, शैशव के प्रागण मे किलकारिया भरते-भरते बाल्यावस्था के प्रागण मे जा खेले और वही से कुछ सोचते-समझते, गम्भीरता के ताने-बाने मे अपनी स्वाँसे पिरोते,

युवावस्था के भावरण को तैयार कर जीवन के मधुमास की रम बिरगी पुष्प-वाटिका में उसे सपेटे पहुँच गए। पर गिरि-शिखर उसी प्रकार अपनी छाती ताने खड़े रहे। कम के अंकुर आज वृद्धावस्था की पतनोन्मुख तड़पन की सारंगी पर थके हुए गीत बजाते मृत्यु की प्रतीक्षा में उतरते सूर्य की ओर मुंह किए बढ़े हैं। पर मणा की उत्ताल तरंगे आज भी उसी प्रकार मौन राग गुनगुनाती जाती है जनमें कभी अभिमान की मदिरा अवश्य ही उनके विकृत एवं भयंकर रूप को प्रदर्शित करने में सफल हुई थी पर आज जब कि उन्हें होश है वे अपनी शान्त-मुद्रा में अपने रास्ते चल रही हैं।

परिवर्तन निरन्तर परिवर्तन के शाश्वत सत्य के उपरान्त भी अभी तक कुबड़ा का घर वही है उसके नीड़ का वही एक द्वार है उसकी लम्बाई और चौड़ाई में कोई अन्तर नहीं आया है। अब भी फूसगमी पर मैले और फटे हुए कपड़ों का राज्य है और घर में वही तीन खाटें हैं। परन्तु समय अपना प्रभाव डाले बिना चला जाये यह कैसे सम्भव है अतः समय बीत रहा है परिवर्तन चक्र चल रहा है कदाचित् इसी के प्रमाण स्वरूप बायीं ओर की दीवार जो एक दिन वर्षा और आँधी की ताव न लाकर नतमस्तक होकर भूमि चूम रही थी आज अपनी नमी और गन्दी देह लिए खड़ी है मौन तपस्वी की भाँति जिसे साधना में लीन होने के समय अपने शरीर की चिन्ता करने का होश नहीं रहता। परन्तु पिछली दीवार का एक भाग नीचे आ गिरा है और उसके स्थान को एक टटिया ने पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। परन्तु कुबड़ा की खांसी अभी उसी प्रकार अपनी उच्चता का प्रदर्शन करने में लगी है।

घर में दीपक टिमटिमा रहा है। कुबड़ा अपनी खाट पर बैठा खांस रहा है। पास ही उसकी बूढ़ी पत्नी सो रही है पर तीसरी खाट

पर एक कुतिया ने डेरा डाल रक्खा है। गुडमुड हुई और अपनी टांगो मे मुँह छुपाते वह सो रही है।

एक वार खांसो का ज्वार आया। फुलवा खांसता-खांसता धनुष बन गया। उसकी पत्नी की आँखे खुली।

"मोहिनी के पिता अब तक जाग रहे हो ?"

"खो-खो करके अपना बलगम थूकते हुए फुलवा ने बहुत थकी आवाज में कहा सोना तो चाहता हूँ पर यह खांसी सोने भी दे।"

"यह खांसी भी पूरे जी का जजाल है—वृद्धा ने कहा—जाने का नाम ही नही लेती, न तुम्हें सोने देती है और न मुझे ही।"

"यह तो दम के साथ जायेगी।"

वह मौन रह गयी।

हाँ! मोहनी की माँ उठ कर थोडा सा तेल तो डाल दो दिए मे।"

"कहाँ तक दिए मे तेल डलवाए जाओगे, अब बस भी करो।" कुछ खिन्न होकर वह बोली।

फुलवा को बात अच्छी न लगी फिर भी पत्नी का स्वभाव जानता था अत मौन रह गया।

"हाँ देखो! कल जब हल छोड कर आओ तो शेरसिंह के पास जरूर होकर आना।"

"जाऊँगा तो अवश्य पर मुझे आशा नही कि वह मानेगा।"—फुलवा के शब्दो मे थकान और निराशा का मिला-जुला प्रभाव था।

"मानेगा क्यो नही। कहना, घर के दो प्राणी रात दिन तुम्हारी सेवा मे लगे हैं। और किसके पास जाएँ अपने कामो के लिए।"

"तुम तो जानती ही हो मोहनी की माँ! वह बडे कडवे स्वभाव का व्यक्ति है।"

"है तो क्या हुआ ? भेड़िया तो नहीं है जो खा जायेगा कह कर तो देखना।"

'हाँ कहूँगा तो पर मैं समझता हूँ कि फागुन से पहले हम मोहनी का विवाह न कर सकेंगे। उस समय तक फसल भी आ जायेगी।

"क्यों नहीं कर सकोगे ? शेरसिंह थोड़ा सा कर्ज़ दे दे तो क्यों नहीं हो सकता।

'शेरसिंह से मुझे आशा नहीं है वह अभी ही अपने द बीसी की आशा रखता है उसे हमारी दो सन्तानों के अमोली की सेवा मजदूरी से भी तो सन्तोष नहीं है। बैल न मरते तो अब तक यह बोझ उतर गया होता और आज मैं मोहिनी के हाथ पीले करने के लिए यूँ न तड़पता।

बुआ कुपित हो कर उठी और उसने खाट पर बैठ कर हाथ नचाते हुए तीव्र स्वर में कहा— क्या वो कभी तुम्हारा वह समय भी आयेगा जब तुम लड़की के हाथ पीले करने बैठोगे। कातक फागुन करते करते यह दिन आ गए। देखा नहीं लड़की पहाड़ हो गयी है पहाड़। सात वर्ष में कहाँ की कहाँ पहुँच गयी ———मैंने उसी दिन कहा था जब तुम खुशी-खुशी उसे अमोली लिए आ रहे थे कि इनका विवाह कर दो मैं उसे भेड़िये की गोद में अधिक दिन नहीं रहने दूँगी। तुम वो अकड़ कर बोले थे मोहनी की माँ जबतक लड़की के हाथ पीले न करूँ चैन से न बैठूँगा।' कहाँ गया वह संकल्प। सात वर्ष हो गए बात यूँ ही टालते आ रहे हो। तुम तो मेरी नाक कटवाओगे नाक।— हाय मैं क्या जानती थी तुम मेरी मोहनी को आग में धकेलने ले जा रहे हो।—कहते-कहते बुआ रोने लगी।

'भगवान। अभी रात को लड़ने और क्लेश करने बैठी है— दुखित होकर फूफा बोला—भला इसमें क्या दोष है ? हाथ में कभी चार पैसे नहीं हुए तो मोहनी के हाथ पीले कैसे करता ? आखिर ठाकुर हैं, ठाकुरों में ही देनी पड़ेगी है कोई ठाकुर यूँ ही थोड़े ही अपना बहू-

बना लेगा। अरे, ठाकुरो के मुँह बडे फैले हुए हैं, बेटी लेते हैं और साथ में ढेर सारी मुद्राएँ। कितनी जगह टक्करे मारी, जानती तो है, किसी ने बात भी नही की।"

अनायास ही पत्नी की अश्रुधारा रुक गयी और उसने बिगड कर पूछा—"तो फिर अपने बेटे का विवाह क्यो नही कर लेते ?" तुम भी झोली भरो।"

फुलवा विवशता की हँसी हँसा और बोला—"बडी भोली है तू भी। कोई कन्या वाला हमारा घर भी झांकता है ? बेटा न लिखा न पढा, ढोर चराता है ढोर। घर का फूँस नही है, लडकी ड्योढ़ी मे दासी है, कौन नही जानता, फिर कौन देगा अपनी बेटी ?"

तर्क हारा तो क्रोध का हाथ पकड कर फुलवा की पत्नी ने आगे बढने का प्रयत्न किया। झल्ला कर बोली—"तो फिर बैठे रहो हाथ पर हाथ धरे, तुम्हारे वश का दिया बुझ रहा है। बेटी ड्योढी में सेवा बजाती-बजाती बूढी हो जायेगी और बेटा शेरसिह के ढोर चराता रह जायेगा। खूब ! नाम होगा, बडा डका बजेगा तुम्हारा मोहनी के पिता। बेटा बेटी तुम्हे मरने के बाद गालियाँ न दिया करे तो कहना।"

फुलवा की आँखे छलछला आयी, उसने आँसूओ को पीने का असफल प्रयत्न करते हुए कहा—"मोहनी की माँ ! पीडा को कभी तो दिल मे दफना दिया कर।" तब उसकी भी आँखे अगारो के स्थान पर आँसू बरसाने लगी। चादर के कोने से आंखे पोछते हुए बोली—"मुझे मोहनी का ध्यान आता है तो दिल धडक उठता है। पहले तो रात को घर भी आ जाया करती थी पर अब तो दो वर्ष से वह दैत्य उसे घर भी नही आने देता। अपने मन मे वह क्या सोचती होगी ?'

फुलवा का कण्ठ अवरुद्ध था। एक बार दीपक भडभडाया और पति तथा पत्नी दोनो ने एक दूसरे की गीली आँखो मे आँखे डाली

और जब दीपक शांत हो गया उसकी बत्ता से धुएं की रेखा सी उठती रह गयी तब दोनों अपनी-अपनी आँखों को सुलाने का प्रयत्न करते करते अपनी अपनी खाटों पर लेट गए। अपने अपने स्थान पर बार्सो करवटें बदलते रहे। पत्नी पश्चाताप करती रही कि सब परिस्थियों से परिचित होने पर भी दुखी पति को वह इतनी क्यों कटी क्यों सुनाती है? उसकी आग उगलने वाली जिह्वा गल कर क्यों नहीं टूट जाती वह क्यों पति के मरमस हृदय पर अपने अमद वाणों का प्रहार करती है ऐसे पति को जो मौन रह जाता है उसके क ट क्म को देख कर इतना क्यों सताती है? पति के दु ख म सान्त्वना देने के अपने कर्तव्य को वह नहीं निभा पा रही और दूसरी ओर कुलवा सोचता रहा, मोहनी की माँ कितनी दुखी है मैं परिवार का संरक्षक एवं पोषक होते हुए भी अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण नहीं कर पा रहा? क्या करू? अपनी मर्यादा को बचाने का प्रश्न है, बेटे का विवाह न हुआ तो इस घर में एक दिन कोई दीपक जलाने वाला भी न रहेगा और यदि कन्या का विवाह शीघ्र न किया तो क्या पता उसका क्या हो। यदि कहीं दुष्ट वेर्दास्य कुछ कर बैठा तो ― । आगे को उस की बुद्धि काम न करती।

दोनों अपने अपने विचारों में उलझे थे। और रात्रि धीरे धीरे अपने पथ पर अग्रसर हो रही थी। भोर का पथिक पूरब के क्षितिज पर आँख लगाए बड़ा धसा आ रहा था। विचारों में डूबते उतराते वे दोनों न जाने कब निद्रा की गोद में जाकर अचेत हो गए।

× ×

समय धारा में जीवन नौका बह रही थी कितनी ही विपत्तियाँ आतीं और धारा के वेग में घुल मिल कर उसे और भी तीव्र बना देती। कुलवा की इन्द्रियाँ सहद्योग आन्दोलन आरम्भ कर देते

को आतुर थी, मानो नौका की पतवारें आगे साथ देने से इनकार कर रही हो।

एक दिन जब सूर्य पश्चिम दिशा मे काली चादर ओढ़ कर सो गया और रात्रि की अवनिका धरा के वक्ष पर आ गई, फुलवा ने कधे से हल उतार कर घर की दीवार से लगा कर रख दिया और मोहनी की माँ को पुकारा—"बैल बाँध दी जो। मैं अभी ही आया।"

"कहाँ जाते हो? तुम्हें ड्योढी का बुलावा आया था।" वह बोली।

जाते-जाते मुड कर फुलवा बोला—"हाँ, हाँ वही जाता हूँ। और बैलो के सामने कुछ डाल देना, आज बहुत थके हैं।"

शेरसिह की बैठक मे पहुँच कर देखा, सामत मदिरा के नशे में डूबा है और अभी तक प्याला भरा जा रहा है। पास मे कुछ बाहर से आये लोग डटे हैं और वे भी मदिरा पान करते हुए अट्टहास करते जाते हैं। कई नौकर-चाकर विभिन्न कार्यों मे लगे हैं।"

किसी ने जाकर कहा फुलवा आया है।

शेरसिह ने प्याला हाथ से रख दिया। और कुछ काँपती सी, मगर भारी आवाज मे कहा—"फुलवा! कब से बुलाया जा रहा है, कहाँ था तू?

फुलवा जो अब तक ठीक प्रकार से वहाँ खडा भी न हो पाया था और प्रणाम के लिए हाथ ही जोड रहा था, तनिक सँभल कर बोला—"अन्नदाता! हल जोतने गया था, जब पता चला तभी भागा चला आया।"

शेरसिह ने पुन एक घूँट मदिरा पी और फिर अपनी मूँछो पर हाथ फेरते हुए बोला—"फुलवा। अरे कुछ घर गृहस्थी के उत्तर-दायित्वो की भी चिन्ता है।

"क्यों नहीं अन्नदाता! इस बुढ़ापे में रोगी देह को रात-दिन मिट्टी में मिलाए रहता हूँ घर गृहस्थी के लिए ही तो। फुलवा बोला।

"अबे जा मैं सब जानता हूँ। सिर पर ऋण का बोझ बढ़ाये जाता है और बस।" मदिरा के नशे में झूमते हुए भी शेरसिंह का स्वर कोमल था।

फुलवा को कुछ विस्मय हो रहा था। जिस स्वर में कभी कोमलता नहीं देखी उसी में इतनी सहानुभूति और संवेदना कैसे आयी? समय मिलता तो फुलवा अवश्य ही उस विषय पर कुछ सोचता।

"कुछ मोहनी की भी चिन्ता है?"

फुलवा के हृदय का स्पन्दन कुछ तीव्र हो गया वह सजग हो उठा।

"जानता हूँ वह जवान हो गयी है।"

कुछ सान्त्वना मिली।

शेरसिंह ने पुनः प्याला मुँह से लगा लिया।

"क्या उसका विवाह नहीं करना? कुँवारी ही रखना है?"

फुलवा क्या कहे? सोच न पाया।

"बोलता क्यों नहीं?" —अबकी बार सामन्त का स्वर ऊँचा था फुलवा घबरा कर बोला—"हाँ अन्नदाता। करना ही है। इसी चिन्ता में तो......।"

"क्या चिन्ता-विन्ता लगा रखी है—झुक कर शेरसिंह बोला—बड़ा आया चिन्ता वाला।

फुलवा कांप गया।

"कब विवाह करना है?"

"हाँ" इतने धीमे स्वर में फुलवा बोला कि शेरसिंह के कानों तक उसकी ध्वनि न पहुँची।

"चट - गनी पट विवाह ! बोल करना है ? अबे बोल कि हां "

"हां सरकार हां।" घबरा कर उसने कहा।

"तो देख ले ये बैठा तेरा जंवाई।"—सामने बैठे एक व्यक्ति की ओर संकेत करके शेरसिंह ने कहा और फिर कुछ हँसा, बल्कि अट्टहास किया और फिर अनायास रुक कर बोला एक गांव का मालिक है। दिल फेंक मस्त आदमी है। बस मोहनी को देखा और फिसल पडा। क्यों ठाकुर ! उस व्यक्ति की ओर देखकर ठठ्ठा करते हुए शेरसिंह ने कहा—"ठीक बात है ना ! तुम भी हो पूरे ही मतवाले ! मोहनी पसन्द आ गयी तो बस हठ कर बैठे।"

फुलवा ने तनिक झुककर उस व्यक्ति की ओर देखा, जो अभी तक हाथ मे प्याला लिए मदिरा पान करने मे व्यस्त था। वह शेरसिंह की बात पर हँस भी लेता था और मदिरा का भी घूंट भर लेता था एक बार उसने रुक कर पूछा—"तो यह है छोकरी का बाप ?"

तें

"हां यही है बेचारा ! भला आदमी है।"—शेरसिंह बोला फिर कुटिलता पूर्वक हँसते हुए फुलवा की ओर दृष्टि डाली बडे पूर्वक उस व्यक्ति की ओर उसे निहारते हुए देख गरज उठा—" घूर कर क्या देखता है ? बुद्धि के साथ आंख भी बेच खायी क्या लाख जन्म धरेगा तो भी ऐसा घर तेरे बाप को भी नही मिलेगा। बडे बडे सामन्तो की चार लडकियां है इनके घर में। इनके लडको के साथ अपनी कन्याओ का विवाह करने के लिए आस-पास के कितने ही ठाकुर सामन्त नाक रगडते हैं। जालपुर तो तूने देखा ही होगा, बस वही के सामन्त है, ठाकुर तेजपालसिंह। बेचारे स्वभाव के बडे भले है। कभी किसी का दिल नही दुखाते। मोहनी इनके घर मे पहुंच कर ऐश करेगी ऐश। सोने के आभूषणो मे लदी रहेगी। पलग पर बैठ कर राज करेगी। जा, हमने मोहिनी का निश्चित कर दिया, बस तुझे कन्या दान करना है।—मोहनी इनकी हो गयी।"

शेरसिंह का अट्टहास गूंज उठा और उसी में आ मिला ठाकुर तेजपाल सिंह का ठहाका। दो सामन्तों का ठहाका मिल कर कमरे की दीवारों से जा टकराया और एक भयंकर प्रतिध्वनि चारों ओर फैल गयी।

फुलवा काँप उठा। वह विस्फारित नेत्रों से कभी शेरसिंह की ओर देखता और कभी तेजपाल सिंह की ओर। उसका अंग-अंग काँप रहा था। कण्ठ सूख गया था और ओठों पर पपड़ी सी जम गयी थी।

शेरसिंह के अट्टहास का तार अकस्मात टूट गया और उसने अपनी लाल-लाल आँखें फुलवा पर जमा दीं मदिरा अपनी लाल जिह्वा साँप की जिह्वा की भाँति उसकी आँखों में लप-लपा रही थी। उसके स्वर में कुछ स्पन्दन सा था। बोला— 'क्या कहता है बोल ? कुछ और कहना है ?"

'मालिक !—समस्त साहस बटोर कर फुलवा बोला— मोहनी तो हुजूर साहब के सामने बड़ी ·····

उसके वाक्य को बीच में ही काटते हुए शेरसिंह ने डाँट पिलायी 'फुलवा ! तेरा भेजा बिगड़ गया है। विवाह के नौ महीने बाद मनुहा आ जायेगी। उसे तू बड़ी कहता है? आयु नहीं सम्पत्ति देख पागल देख।

परन्तु अन्न दाता············

"परन्तु बस बड़ा। दूर हो जा मेरी नजरों से। जो हम कह चुके हैं वही होगा हम ठाकुर साहब को जबान दे चुके हैं।'

फुलवा फिर भी खड़ा रहा।

शेरसिंह फिर गरज उठा— 'जाता है या ··· —

भयभीत फुलवा तत्काल वहाँ से हट गया। पर उसे चबूतरे से उतरना कठिन हो गया, उस के पैर काँप रहे थे। ज्योंही सड़क पर

आया धड़ाम से गिर पड़ा और फिर खाँसी का तूफान आया। सड़क पर सोये कुत्तों ने अपने विश्राम स्थल पर मानव के पड़ने की अनधिकार चेष्टा को चुनौती देने के लिए, "भौं-भौं" की झड़ी लगा दी। खाँसी के क्रूर प्रहार से मस्त फुलवा के कानों में मानो शेरसिंह की गर्जना चारों ओर से पड़ रही हो वह काँप रहा था और पसीने में नहा गया था, खाँसते-खाँसते ही वह कुत्तों की ओर मुँह करके हाथ जोड़ देने का असफल प्रयत्न कर रहा था। पर कुत्ते चारों ओर से एकत्रित हो कर उस से लिपट पड़ने को आतुर प्रतीत होते थे। फुलवा अपनी सभी शक्ति बटोर कर उठने और घर की ओर भाग पड़ने का प्रयत्न करने लगा।

× × × ×

"क्या हुआ जी! तुम तो पसीने में नहा रहे हो, बालों में धूल भरी है, कपड़ों में भी धूल ही धूल है? बात क्या है? तुम्हें हो क्या गया है, कहीं गिर पड़े, किसी से लड़ाई झगड़ा हो गया?" फुलवा की क्षत-विक्षत तथा धूल-धूसरित दशा देखकर विस्मय प्रकट करती हुई मोहनी की माँ ने पूछा। और अपने हाथ से कपड़े झाड़ने लगी।

पागलों जैसी मुद्रा में फुलवा उसे देख रहा था, जैसे उसकी समझ में आ न रहा हो कि वह कौन है और क्या कर रही है?

उसके इन विस्मय-जनक हाव-भाव, वेष और मुद्रा पर उसे और भी आश्चर्य हुआ और फिर आश्चर्य के साथ शंका ने भी अपना रंग फैलाना आरम्भ कर दिया। वह उद्विग्न होकर कहने लगी—"तुम बोलते क्यों नहीं। क्या बात हो गयी, क्या शेरसिंह ने कुछ कहा है?"

फुलवा शेरसिंह का अट्टहास देख व सुन चुका था, उसने भी उस की नकल करने का प्रयत्न करते हुए एक जोर का ठहाका लगाया। उसकी पत्नी विस्फारित नेत्रों से उसकी यह दशा देख रही थी। -

"अरे तुम मुझे घूर-घूर कर क्या देख रही हो? हँसो ठहाके लगाओ खुशियाँ मनाओ घी के दीपक जलाओ। सोहनी की माँ! नाचो गाओ।"—फुलवा ने अपनी पत्नी की बाहें पकड़ कर झकझोरते हुए कहा।

यह देख वह और भी परेशान हो गयी उसने दुखित हो कर कहा— 'क्या हो गया है तुम्हें?'

'सोहनी की माँ! मुझ से पूछती हो मुझे क्या हो गया है? तुम बताओ तुम्हें क्या हो गया है। तुम्हारी बेटी का विवाह हो रहा है और तुम आँखें फाड़-फाड़ कर मुझे देख रही हो! घर में दीपक तक नहीं जलाया तुमने!'—फुलवा ने पागल की ही भाँति अस्वाभाविक मुद्रा में कहा।

पत्नी दौड़ कर अन्दर गयी और जल्दी से दीपक जला कर आयी और बोली— क्या बक रहे हो तुम!

'सोहनी का विवाह हो रहा है।"

'कहाँ? किस के साथ?' प्रफुल्लता के मद के चढ़ते नशे में फुलवा की पत्नी ने पूछा।

'जालपुर में' वहाँ के प्रसिद्ध सामन्त ठाकुर तेजपाल सिंह के साथ।"

"क्या सच?"

'और क्या झूठ।

वह आत्म-विभोर हो कर अपने चारों ओर देखने लगी उसका रोम रोम उल्लसित हो गया वह फूली न समाती थी और इसीलिए अपना उल्लास को चार चाँद लगाने के निमित्त वह बोली—"तुम्हारे मुँह में घी शक्कर। किन्तु सामान्त के साथ मेरी बेटी का विवाह। क्या कहीं स्वप्न तो नहीं सुना रहे?"

"पगली तू स्वप्न की बात कर रही है, यहाँ दूल्हा तैयार बैठा है।"

"दूल्हा ? कहाँ ?" आश्चर्य का रंग गहरा होता जाता था। एक ओर उल्लास और दूसरी ओर आश्चर्य, ऐसा अनुभव हो रहा था मानो वह आकाश की ओर उड़ी जाती हो।

"दूल्हा ठाकुर तेजपालसिंह यहीं उपस्थित है। कहो तो दर्शन करादूँ जँवाई राजा के।"

"हाँ, हाँ कहाँ है वह ?"

"ठाकुर शेरसिंह के महल में।"

उसकी पुलकन का आधा रंग उड़ गया।

'विश्वास न हो तो जा अपनी आँख से देख कर आ। वह इस समय भी बैठक में शेरसिंह के साथ मदिरा पान कर रहा है।"

फुनवा की पत्नी का उल्लास शनैः शनैः समाप्त होता जा रहा था।

"जानती हो, यह विवाह कौन कर रहा है ?"

"कौन ?" मरी अवाज ने पूछा।

"श्यामपुर के सामन्त ठाकुर शेरसिंह हमें तो बस कन्या दान करना है।'

"कुछ समझ में नहीं आ रहा। क्या कह रहे हो तुम, यह चली चली पागलों जैसी बात क्या कर रहे हो ? क्या पागल" "

पत्नी की बात काटते हुए फुनवा बीच ही में बोल उठा—"जिस की १८ वर्ष की बेटी का विवाह ५० वर्ष के बूढ़े शराबी से हो रहा हो क्या वह भी अपने होश में रह सकता है मोहनी मा ! तू कहती थी बेटी मेरी है, मोहनी तेरी नहीं, मेरी नहीं हम में से किसी की नहीं वह शेर-

सिंह की है। मोहनी कन्या नहीं शेरसिंह का खेत है यह जिसे चाहे उसे दे सकता है, उसे। वह उसका मालिक है क्योंकि मोहनी का बाप उसके चार खेत जोतता है और उसके पास शेरसिंह की ८ बीसी मुद्राएँ हैं। शेरसिंह ने चार खेत के बदले मुझे, तुम्हें हमारी बेटी और बेटे को खरीद लिया है। अब मोहनी पर हमारा नहीं शेरसिंह का अधिकार है वह शेरसिंह की दासी है।

यह क्या बक रहे हो। कुपित हो कर फुलवा को पत्नी ने पूछा।

'ठीक कह रहा हूँ मोहनी की माँ। शेरसिंह ने कहा है मोहनी, तब पाम सिंह हो चुकी।'

फुलवा की पत्नी को मूर्च्छा आने लगी। उसके हृदय की गति मन्द हो गयी उसकी आँखें फटने लगीं। सिर चकराने लगा।

'क्या देख रही हो विवाह की तैयारी करो या विष खा कर सो रहो।''

मोहनी की माँ धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी और फुलवा की आँखें बरस पड़ी वह हाथों में अपना सिर थाम कर बैठ गया।

× × ×

मोहनी दौड़ी-दौड़ी अपने घर आयी। रात्रि को समाचार उसने सुना था वह कहाँ तक सही है इसी का पता लगाना था उसे।

"माँ! मैं यह क्या सुन रही हूँ!" साहस कर के उसने पूछ ही तो लिया। उसकी माँ की आँखें सूजी हुई थीं और बाल बिखरे थे। वह दहाड़ मारकर रो पड़ी। मोहनी को उसने छाती से लगा लिया।

मुँह लटकाए फुलवा घर में आया वह माँ पुत्री का यह दुःख

पूर्ण मिलन देख कर लौट पडा। मोहनी ने मां की वाहो से अपने को मुक्त कर के जाते हुए पिता को रोका—"पिताजी ! क्या यह सही है ?"

विना मुंह मोहनी की ओर किए ही फुलवा रुंधे हुए कण्ठ से बोला—"वेटी ! मेरा कोई दोप नहीं, दोप मेरे भाग्य का है, दोष मेरी मजबूरी का है।"

मोहनी रो कर वोली—"पिताजी ! आप मेरा गला घोंट दीजिए।"

सारी रात जो वाक्य वह रटती रही थी और जिसे कहने के लिए वह साहस वटोरती रही थी, वह उसने सफलता पूर्वक दोहरा दिया।

फुलवा वहां से चला गया। मोहनी अपनी मां से चिपट गयी।

आंसुओ का वेग कम होते ही, मोहनी की मां वोली—"वेटी ! शेरसिंह मेरे भाग्य में आग लगा रहा है। मैं तेरी मां हूं और एक स्त्री हूं। तेरी वात समझती हूं। इसमे तेरे वाप का कोई दोष नही। सारी रात रोते रहे हैं वे। पर तू और हम सव एक कसाई के पजे मे जकडे हैं, यह चार खेत हम चार प्राणियो के हाथों, पैरो और जवान सभी पर वेडियो का काम कर रहे है। पापी पेट जो न कराये। हमारी क्या चलती है हम स्वय तैयार भी न हो, तो क्या होता है, शेरसिंह अपने डण्डे के बल पर अपनी मन चाही करके छोडेगा। हम निर्वल, निर्धन, और लाचार हैं तुझे विदा करेंगे, जैसे किसी की चिता जला कर उस पर ककर फेक देते हैं, बिल्कुल इसी तरह तू जिन्दा चिता मे रक्खी जा रही है वेटी !"

और वह फफक-फफक कर रो पडी।

किन्तु मोहनी न रो पायी, उसने पूछा—"भैया कहा है ?"

माँ ने रोते-रोते कहा—"होगा कही शेरसिंह के खेतो मे या वन मे ढोरो के पीछे।"

मोहनी वहाँ से उठी और घर में भाकर आकर अपने मौन रुदन करते बाप के सामने खड़ी हो गयी। थोड़ी देर खड़ी रही। बोली कुछ नहीं फुलवा का साहस न हुआ कि वह उससे एक भी शब्द कहे। और वह पिता को ऊपर से नीचे तक एक बार देखकर चल पड़ी फिर कुछ दूर जाकर लौटी और पिता के चरण स्पर्श करके वह द्रुत गति से वहाँ से चली भागी।

ठाकुर शेरसिंह ने उसे अपने पास बुलाया और बोले— 'मोहनी! निर्धन किसान के घर में जन्म लेकर भी तूने जो रूप पाया है उसमें कितना मद है कितना आकर्षण है यह मुझे कल साय काल ज्ञात हुआ। मैं अभी तक तुझे बच्ची ही समझे बैठा था। बस हमारे यहाँ न सही हमारे मित्र के यहाँ सही रहेगी तू महल में ही। बड़ा भाग्य पाया है तूने। ले चल कपड़े पहन ले सजकर आना और आज से तेरी छुट्टी।' —हँसते हुए शेरसिंह ने एक जोड़ा उसे दे दिया।

किन्तु छुट्टी हो जाने पर भी उसका घर जाने को जी न चाहा।

शेरसिंह के प्रबन्ध से फुलवा के घर मण्डप की तैयारियाँ हो रही थीं? मोहनी चुपचाप शेरसिंह की ड्योढ़ी में इधर से उधर अपना बोझ ढोए फिर रही थी। ड्योढ़ी की दासियाँ रानियाँ और आने-जाने वाली स्त्रियाँ कभी-कभी उसे छेड़ती चुहल करती और वह 'प्रव रोगी प्रव रोगी' सी होकर वहाँ से हट जाती।

सूर्य विश्राम के लिए जाने लगा और आकाश की नीली थाली में कोकिल हिलोरे लेने लगा। तब अनायास ही शेरसिंह की दृष्टि मोहनी पर पड़ी। उसने डाँटकर कहा— 'मोहनी! तू अभी तक अपने घर नहीं गयी आज आधी रात के समय तो शुभ लगन है पाणि ग्रहण संस्कार होता है। जा जल्दी कर हाथ रचा और कुमी लगा। देखना कहीं हाथ न धुल जाना!' अन्तिम शब्द कह कर शेरसिंह मुस्कराया।

मोहनी ने पुराने वस्त्र उतार दिए और शेरसिंह का दिया जोडा पहन कर ड्योढो से निकली, कुछ दूर तक अपने घर को ओर चलो और फिर रुककर कुछ सोचने लगी। उसके अन्तर मे ध्वनि गूंजी—"इस विवाह से तो मृत्यु भली !"—और उसका मुख चन्द्र कठोर हो गया। वह घूम गयी, ग्राम से बाहर जाने वाले रास्ते की ओर। अभी तक जो पैर शरीर का बोझ तक सहन करने में आना-कानी कर रहे थे, उन्ही मे न जाने कहाँ से बल आ गया और वह तीव्र गति से चल दी। ग्राम का एक कुत्ता उसके पोछे-पोछे चला। मानो वह उसे विदा करने जा रहा हो।

४

मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार ही तो चल सकता है और बालक बेचारे की शक्ति ही क्या? कोमल तलवे पर ईंट कंकड़ों के कारण दुखने लगे और फिर फफोले की भांति उनमें पीड़ा होने लगी। अब और नहीं चला जा सकता। जब असहाय हो गया तो रोकर माँ से कह ही तो दिया। किन्तु अम्मा तो ग्राम ही जाना चाहती थी उसने बल पूर्वक उसे घसीट के चलना चाहा। कपिल रो पड़ा। हृदय के स्थान पर पाषाण होता तो कदाचित् उसका रुदन अम्मा के हृदय को द्रवित न करता पर अन्याय की असह्य मार ने उसे कितना ही कठोर क्यों न कर दिया हो है तो वह माँ ही। बेटे के रुदन को न सह सकी।

वृक्ष के नीचे कपड़ों और बर्तनों का बोझा डाल दिया और बेटे का सिर अपनी गोदी में रखकर सुला लिया। कुछ दूर पर आ रहे शम्भू ने उसे वृक्ष के नीचे ठहरा देखा तो वह भी दूर ही खड़ा हो गया। सोचता रहा क्या करूँ? क्या कहूँ? क्या वह मेरे प्रस्ताव को मानेगी? क्यों मानेगी? इतना भारी आघात पहुँचाया है क्या अब भी वह विश्वास कर सकेगी। नहीं? वह भी तो मानव है। फिर वह क्या करे? क्या लौट जाये और जाकर मकुनीचन्द से अपने कारनामे का मूल्य वसूल करे? मन आकुल था विचार बिखरे हुए थे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह एक चबूतरे पर बैठ गया और सोचता रहा। कितनी ही देरी तक

रात्रि अपनी डगर पर चलती रही। बार-बार शम्भू को अपनी भारी जेब और यशा के खाली हाथ का ध्यान आता रहा। कभी-कभी सोचता, तुझे क्या ? कोई मरे या जिए, चल अपना काम कर। फिर कुछ और सोचने लगता। उसे अपना पाप सता रहा था।

× × ×

अनायास ही यशा की निद्रा भग हो गयी। वह एक स्वप्न देख रही थी। उसने देखा था कि उसके पास मुद्राओ की गठरियाँ रक्खी हैं और वह सोच रही है कि वह इतनी मुद्राओ का क्या करे ? तभी एक चोर आता है और वह गठरी उठा कर भागने की चेष्टा करता है, बस आँख खुल गयी और सपना उड गया। यशा का हाथ अपनी गठरी पर गया। उसे एक भारी वस्तु उसमे रक्खी अनुभव हुई। जल्दी से टटोलकर देखा। एक थैली रक्खी थी। शीघ्रतापूर्वक थैली खोली, मुद्राएँ थी। स्वर्ण मुद्राएँ। यशा के हाथ काँपने लगे। आश्चर्य और भय दोनो का सम्मिश्रण उसके अन्तर को उद्विग्न कर रहा था। चारो ओर दृष्टि डाली, वहाँ कोई नही था। फिर कहाँ से आयी यह थैली ? यशा की समझ मे कुछ न आया।

एक शका ने सिर उठाया—"कही मुझे फँसाने के लिए किसी ने चोरी की मुद्राये तो मेरी गठरी मे नही रख दी ?"

शका का अकुरित होना था कि यशा ऊपर से नीचे तक काँप गयी। हडबडा कर कपिल को जगाया और गठरी सिर पर रख कर वहाँ से चल दी। थैली वहाँ वृक्ष की जड में छोड दी। वह कहीं दूर चली जाना चाहती थी ताकि थैली वाले षडयन्त्र मे फँसाने वालो की दृष्टि उस पर न पडे। द्रुतगति से चलने का प्रयत्न किया, पर कपिल की आँखो मे नीद थी और पैरो में रक्त छलक रहा था, उससे चला ही नही जाता था। यशा को क्रोध हो आया। उठा कर एक

चपत दे मारा और जब वह रोने लगा तो मठरी भूमि पर रख बहुत धीमे स्वर में, बल्कि बड़बड़ाहट में उसे चुपाने का प्रयत्न करती। कभी हाथ से मुँह भींचती और कभी प्यार से उसे समझाती। अर्ध-रात्रि को सड़क पर बालक के रोने की आवाज सुन कर लोग उठ पड़ेंगे और फिर उसकी मुसीबत आ जायेगी। इसी भय से वह कपिल को मनाने लगी। किन्तु पीड़ाओं और रुदन की बाढ़ कभी-कभी लाड़-प्यार के तिनकों से नहीं रुका करती।

रात्रि की निस्तब्धता तनिक-सी भी ध्वनि को दूर-दूर तक प्रसारित कर देती है। कपिल का रुदन और माया की मन-मनौवल रात्रि को पहरा दे रहे जन-सेवक के कान में पड़ गयी और वह शीघ्र ही वहाँ पहुँच कर पूछ बैठा— क्या है?"

कुछ भी नहीं······कुछ भी नहीं।"

काँपते हुए स्वर की दो बार इन्कारी भी कुछ तो है, की शंका का समाधान नहीं कर पायी।

'कौन हो?"

माया क्या कहती? अपना नाम-धाम बताती तो स्वर्गीय पण्डितजी की बदनामी होती और यह वह कैसे सहन कर सकती थी।

अर्ध रात्रि को एक स्त्री का इस प्रकार भटकना सन्देह जनक तो है ही और जब वह अपना नाम पता भी न बताए तो क्या अनुमान लगाया जावे?

जन-सेवक ने माया और कपिल को अपने साथ लिया और रात्रि उन्हें चौकी पर ही व्यतीत करनी पड़ी। माया मौन थी वह अपने बारे में कुछ भी तो नहीं बताना चाहती थी।

× × ×

राज्य दरबार में एक आवारा स्त्री का पेश होना था कि सभी अपने औत्सुक्य को शांत करने के लिए मामला सुनने लगे।

"अर्ध-रात्रि के समय यह स्त्री इस बालक के संग सड़क पर फिरती पायी गयी। नाम-धाम कुछ नहीं बताती।"—जनसेवकों ने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए कहा।

अब राजा की बारी थी।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

यशा मौन।

"कहाँ रहती हो?"

यशा फिर भी मौन रही।

"तुम्हारी माँग मे सिन्दूर और हाथ मे चूड़ियाँ नहीं। विधवा हो?"

यशा ने गरदन हिलादी।

"कहाँ जाना चाहती हो?"

अब यशा बोली—"जहाँ आप भेज दें।"

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

"तुम्हारा घर नही है?"

यशा ने इन्कारी मे गरदन हिलादी।

"माँ बाप?"

"नही।"

"ससुराल मे कोई है?"

"नही।"

"रात्रि मे इस प्रकार भटकने का क्या कारण है?"

"आश्रय की खोज।"

"किन्तु दिन मे क्यों नही?"

"मकान मालिक ने दिन मे नही निकाला।"

तुम्हारे स्वर्गीय पति का नाम पता ?"

वह मौन रह गयी।

राजा सोचने लगा क्या करें? मान-मर्यादा बता रहा है दुखी है पीड़ित है और सच्चरित्र भी।

"राज्य-कोष से २०० मुद्राएं सहायतार्थ देकर स्वतन्त्र कर दिया जाये।

राजा के आदेश पर यशा की जान में जान आयी। वह डर रही थी कि कहीं उसके स्वर्गीय पति का नाम न मालूम हो जाये। कोई पहचान न ले। स्वर्गीय की आत्मा को कष्ट होगा। नगर में बदनामी होगी और क्या पता मुहल्ले वालों के लाछनों का चर्चा भी चल निकले।

मुद्राएँ लेकर दरबार से निकल यशा आश्रम की खोज में निकली। कहते हैं विपदाएं स्वयं सहन-शक्ति उत्पन्न कर देती हैं और कठिनाईयाँ ही पार पाने का रास्ता बता देती हैं। भटकती हुई यशा इस मुहल्ले से उस मुहल्ले इस द्वार से उस द्वार तक घूमी। लोगों की घूरती पैनी दृष्टियों से बचती हुई विभिन्न प्रकार की अपमानजनक कष्टदायक लज्जाजनक और खेदजनक बातों को सुनते देखते और सहते हुए वह एक विधवा वृद्ध ब्राह्मणी के छोटे से घर में पहुँच गयी और दो दुखियारियों एक ही नीड़ में सिर छुपाने का निश्चय करके एक दूसरे के जीवन से बंध गयी। वृद्धा को बेटी और पौत्र मिला और यशा को माँ और कपिल को बूढ़ी दादी। निर्धन का हृदय विशाल होता है इतना विशाल कि पूरब क्षितिज को पोंछ पश्चिमी क्षितिज के कुम्भ में छुप सकती है। निर्धन और दुखी हृदय में पीड़ायें सहने की शक्ति तो होती ही है दूसरों को सान्त्वना देने की क्षमता और अपनी चादर से दूसरों के सिमट आने पर सहन करने की आदत भी होती है। तो यशा इस झोंपड़ी में रहने लगी जिसका सुहाग लुटे एक युग बीत रहा था।

उस वृद्धा ब्राह्मणी के हाथ की लाठी का स्थान कपिल ने ले लिया और रक्षा की सरंक्षिका वृद्धा ने सिलाई, कढ़ाई आदि का काम लाने

और पहुँचाने का काम सम्भाला। जीवन-चक्र इसी झोपडी के प्रांगण मे चल पडा। यशा की आयु कटती जाती थी, किसी प्रकार गुजर भी हो ही रही थी। यहाँ तक कि ७ वर्ष बाद वृद्धा के ससार से उठ जाने के उपरान्त भी यशा के जीवन मे विशेष अन्तर न आया। मेहनत के बल पर पेट पालना और सन्तोष रखना यही था यशा का जीवन। कपिल अपनी उसी रफ्तार पर रहा। खेलना-कूदना, सोना और रोटी खा लेना बस यही थे उसके गिने-चुने कार्य। प्रात साय में बदल जाती और सध्या भोर तक चली जाती किन्तु कपिल को न कोई चिन्ता और न कोई काम ही।

× × ×

नर-नारी पक्तिबद्ध हो कर सडको के दोनो और खडे हो गए। कुमारी कन्याओ और नवोढा दुल्हनो ने मकानो की छतो और छज्जो पर आसन जमाया। यद्यपि कोई आदेश देने वाला और लोगो को उनके कर्तव्य का बोध कराने वाला राज्यकीय कर्मचारी सडको पर व्यवस्था में व्यस्त न ही है, तथापि लोग स्वय ही अनुशासित और शांत खडे हैं। ऐसा लगता है मानो शहर की अधिकतर जन-सख्या अपने काम छोड कर सडको पर आ गयी है। सभी की आंखो में औत्सुक्य झांक रहा है। प्रतीक्षा है, सवारी की। वह सवारी जो प्रति वर्ष इस दिन सज-धज के साथ निकलती है और लोग उसकी छटा, आन-बान, सज-धज, ठाठ-बाठ देखते हैं और अपने राज-पुरोहित के दर्शन करते हैं। राजा भी जिसे प्रणाम करता है, वह व्यक्ति कितना सौभाग्यशाली, विद्वान् और प्रतिभावान् होता है। यह सोच कर नगर के प्रजाजन उसके सामने आंखें बिछा देते हैं। और इस बार तो विशेषतया लोग राज-पुरोहित की सवारी देखने के लिए एकत्रित हुए हैं, क्योकि नगर मे यह बात फैल गयी है कि राजा पुरोहित के सकेत पर चलता है और एक प्रकार से प्रधान मत्री के भी कुछ अधिकार उसी के हाथो मे चले गए हैं। इस

बार राज्य की स्थापना की वर्ष-गाँठ के उत्सव के अवसर पर राज्य-पुरोहित ने विभिन्न राज्यों के पुरोहितों का सम्मेलन आमन्त्रित किया है और वह स्वयं ही उसका उद्घाटन भी करेगा। राज्य के प्रबन्ध से इसीलिए पुरोहित की सवारी विशेष आकर्षण के साथ निकाली जा रही है। लोगों में सवारी की साज-सज्जा के सम्बन्ध में बहुत सी बातें फैल रही हैं अतः सब उत्सुकता वश प्रतीक्षा में हैं कि देखें क्या विशेष आकर्षण है इस बार पुरोहित की सवारी में।

अश्वारोही कर्मचारी नगाड़ा बजाते हुए आये। लोग समझ गए कि पुरोहित की सवारी आ रही है। कुछ धक्कम-धक्का थमी और फिर शांत भी हो गयी। विभिन्न प्रकार के बाजे जिनकी संगीत मय स्वर लहरी के साथ पुलकन बरस रही है आगे-आगे थे, उनके बाद वन-सेवकों की टोलियाँ रंग-बिरंगी पोशाकें पहने आयीं फिर कुछ झाँकियाँ जो घोड़ा गाड़ियों पर बनी थीं। झाँकियों में तत्कालीन कला के अनुपम नमूने और सांस्कृतिक स्मृतियों की झलक थी उनके पीछे थी नृत्य करती लोक कलाकारों की टोलियाँ और पीछे थी सरस्वती की एक रत्न-मणियों से जड़ी विशालकाय मूर्ति जिसे अनेक व्यक्ति खींच रहे थे और साथ-साथ चलने वाले अनेक साहित्यानुरागी उस पर पुष्प-वर्षा करते जाते थे फिर अस्त्र-शस्त्रों के प्रदर्शन की बारी थी विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक अपने स्वस्थ और सबल शरीरों का प्रदर्शन करने की जिनकी इच्छा अधिक प्रतीत होती थी धीमी गति से चल रहे थे। उनके पीछे कुछ गाड़ियों में लदे हुए वे भार अस्त्र थे जो रण-स्थल में जय और पराजय का निर्णय बहुत शीघ्र क डालते थे। इन सब के पीछे ऊँचे और विभिन्न प्रकार से सजाए गए र में सवार थे राज-पुरोहित प [illegible] दत्त। रथ में २१ सुन्दर घो स्वस्थ अश्व जुते थे। चार रक्षकों की टोली घोड़ों पर सवार पीछे-पी चल रही थी। सवारी का यह अपूर्व और शानदार जलूस ए स्थान से गुजरते गुजरते लगभग आध घण्टा लगा देता था। अ

सवारी पहुँचती लोग राज-पुरोहित की जय-जयकार करते। पुरोहित के प्रति श्रद्धा इन जय-जयकारो का रहस्य थी अथवा राज-पुरोहित के हाथ मे पहुँच गयी सत्ता का प्रभाव अथवा पुरोहित के साथ 'राज्य' के जुड जाने का कारण यह तो कैसे कहा जाये। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि लोग अपने राजा द्वारा सम्मानित व्यक्ति के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रकट करना, उसका हार्दिक अभिनन्दन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे।

—तो सवारी चली जा रही थी। विभिन्न राज-मार्गों और जन-पथो को पार करती हुई सवारी उस सडक पर भी पहुँची जिसके दोनो ओर विशाल अट्टालिकाओ के बीच-बीच मे उन निर्धनो के टूटे-फूटे मकान भी थे जो कदाचित् इसलिए जीवित थे क्यो कि उन्हे मृत्यु ने याद नही किया था। अपने सूखे चेहरो और सूखे ककालो को लिए वे भी सवारी के स्वागतार्थ खडे थे।

बडी शान से जब सवारी उधर आयी बच्चो के हड्डी निकले चेहरो पर हर्ष हिलोर लेने लगा। कपिल ने यह शान और ठाठ बाठ देखे तो हर्ष-विभोर होकर वह अपनी प्रसन्नता और हृदय की प्रफुल्लता व्यक्त करने के लिए अपने चारो ओर देखने लगा। कौन है ऐसा जिससे वह अपनी बात कहे। उसके साथ खेलने वाले लडके हैं, पर वे स्वय इतने आश्चर्य चकित और पुलकित हैं कि दूसरे की बात सुनने का उन्हे अवकाश कहाँ? पास-पडोस के सभी वृद्ध, युवक, स्त्री पुरुष और बालक वहाँ एकत्रित है पर उसकी माँ नही। यह देखकर वह कुछ परेशान हो गया। उसकी दृष्टि चारो ओर चक्कर काट रही थी। खोज रहीथी अपनी माँ को, जो कभी हँसना नही जानती, जिसके ओठो से किसी ने मुसकान ऐसी नोची है कि कभी पुन उभरने का नाम ही नही लेती। उसकी आँखें बिना रोये भी हर समय शोक के निर्झर का रूप लिए रहती है। कपिल आज अपनी माँ के चेहरे पर मुसकान देखना चाहता था और वह

बताना चाहता था कि सवारी के जलूस की किस बात ने उसे प्रभावित किया ? क्या बात क्यों प्रशंसनीय है ? और किसने उसके मनमें कुछ पूछी उत्पन्न कर दी है । किन्तु यशा वहाँ कहीं नहीं थी ।

वह भागा घर की ओर ।

"माँ माँ कहाँ हो तुम ?

माँ की खोज में पुकारता हुआ वह घर में चला गया और जब उसने अपनी माँ की पीठ देखी वह हर्ष विभोर हो कर बोला— अरी माँ ! तुम यहाँ बाहर चलो देखो कितनी शान कितने ठाठ से सवा"""

माँ के पास पहुँचते २ उसके वाक्य ने दम तोड़ दिया । मुसकान गुम हो गयी और आँखों में हिलोरें से रहे हर्षोन्माद का स्थान आश्चर्य ने लिया ।

'माँ तुम रो रही हो ?' उसने बहुत धीमे स्वर से पूछा ।

अश्रु ओं का वेग बढ़ गया और यशा फूट-फूट कर रो पड़ी । कपिल हत प्रभ सा गुमसुम खड़ा रह गया । क्या करे वह ? माँ क्यों रो रही है ? उसकी समझ में कुछ न आया ।

साहस करके पूछ ही लिया— 'माँ लोग सवारी देख रहे हैं और तुम यहाँ रो रही हो ? क्या बात है ?"

यशा का गला अवरुद्ध था वह कुछ न बोल सकी ।

कपिल के अङ्ग भी शिथिल पड़ गए, वह सामने की खाट पर बैठ गया और नैत्रों में विनम्र भाव लेकर उसने पूछा— 'माँ ! मुझे बताओ तो सही क्या बात है ?'

यशा बोलना चाहते हुए भी न बोल पायी ।

तब कपिल ने उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा । 'माँ ! चलो मेरे साथ यहाँ अकेली न जाने क्या बात याद करके रो उठी हो ! सामने सड़क पर चल कर तमाशा देखो । बड़ा आनन्द आवेगा ।"

अब यशा से रहा गया। बोल ही पडी—"कपिल! जिसे तू तमाशा समझ रहा है, तेरे मुँह पर तमाचा है तमाचा।"

वह चक्कर में पड गया। पूछा—माँ क्या कह रही हो?"

यशा को आवेश आ गया—"लज्जा हो तो डूब मर कही जाकर।"

कपिल विस्मय के अथाह सागर मे डूब गया। कुछ समझ में न आया।

माँ क्या कहना चाहती है, खिन्न होकर बोला—"माँ! यह तुम्हे हो क्या गया? उधर सवारी निकली जा रही है और तुम मुझे गाली देने में लगी हो।"

कपिल! क्या तू हृदय हीन है, तुझमे बिल्कुल भी बुद्धि नही?"

"कभी रोती हो, कभी मुझ पर बिगडती हो, क्या कारण है?"

"यह रोना आज ही का थोडे ही है, तू इसी तरह बुद्ध बना रहा तो जीवन पर्यन्त मुझे रोते ही रहना है। पगले! तुझ में बुद्धि होती तो क्या इस सवारी को देखकर तू प्रसन्न होता। मेरी ही तरह तू भी रोता। सवारी की सजधज दूसरो के लिए पुलकन और हर्ष-जनक हो सकती है मेरे लिए यह दु:ख जनक है। मेरे हृदय का नासूर फिर रिस उठा है।"—तनिक आवेश मे आकर यशा बोली।

"माँ मुझसे ऐसी क्या भूल हुई? इस सवारी ने हमारा क्या बिगाडा है?"—कपिल ने अपनी ना समझी को प्रगट करते हुए कहा।

"कपिल! तू इतना बडा हो गया। १६ वर्ष का होने को आया अभी तक तुझमे समझ नही आयी। तू ही है मेरे रुदन का कारण। तू आज किसी योग्य होता, इस प्रकार बुद्ध, और अशिक्षित न होता तो मैं भी आज के दिन प्रसन्न होती बल्कि गर्व के मारे फूली न समाती। तू यदि किसी योग्य होता तो यह सवारी आज हमारे घर से चली

होती। शकुनीदत्त के स्थान पर तू बैठा होता। तू तमाशा देखने वालों में नहीं तमाशा दिखाने वालों में होता। पण्डित कपिल की जय-जय कार के नाद उठते और शकुनीदत्त तेरे ऊपर पुष्प वर्षा करने वालों में होता।"—यशा ने अपनी व्यथा का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा। कपिल की गरदन लटक गयी।

वह फिर बोली—"जानता है तेरे पूर्वजों से राज-पुरोहित का पद तेरे परिवार की शोभा बनता चला आ रहा था। हमारे पूर्वजों ने सारे राज्य पर हुकूमत की है सारा राज्य हमारे पुर्खों के आगे नत मस्तक रहा है। पर आज उन महान् पुरखों की मूर्ख सन्तान अनपढ़ है, दरिद्र है और पागल है। आज राज-पुरोहितों की एक मात्र सन्तान राज-पुरोहित की सवारी का तमाशा देखने वाली है आज उनकी सन्तान सड़क पर आवारा फिरते कुत्तों के संग बसने वाली है। मुझे याद है तेरे स्वर्गीय पिता के शब्द। उनका अन्तिम समय था नगर के भव्यमान्य लोग शैया के चारों ओर सिर झुकाए शोक मग्न खड़े थे। मैं उनकी शैया के निकट तुझे लेकर पहुँची। उस समय तेरी आयु पाँच वर्ष थी। तेरे पिता जी ने कहा— यशा! मेरे कपिल को खूब पढ़ाना विद्वान बनाना। राज-पुरोहित का पद हमारे पूर्वजों की धरोहर है प्रत्येक युग अपनी सन्तान को विरसे में राज्य-पुरोहित की पगड़ी देता रहा है। कपिल छोटा है वह अभी इस धरोहर को न सँभाल सकेगा। पर बड़ा होकर वह इस योग्य बने कि मेरा आसन ग्रहण करे यही मेरी अन्तिम इच्छा है। उन्होंने कितने दुःख के साथ कहा था—'पूज्य पिताजी ने जो पगड़ी मुझे सौंपी थी उस धरोहर को मैं किसे सौंपूं? यह सोचकर ही मुझे हार्दिक दुःख हो रहा है।' और उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। मैंने उस समय उन्हें विश्वास दिलाया था कि मैं किसी प्रकार भी पढ़ाऊँगी और इस योग्य बनाऊँगी कि वह अपने पूर्वजों का स्थान ग्रहण कर सके। पर मुझे उस दिन क्या मालूम था कि तू इतना मूर्ख

निकलेगा, पढने से जी चुरायेगा और आवारा लडको की टोली में घूमा करेगा। तूने मेरे सकल्प को पूरा नही होने दिया। तेरे पिताजी की आत्मा स्वर्ग मे तेरे लक्षण देख-देखकर तडपती होगी। अब बोल आज के दिन मुझे रोना क्यो न आये ?"

कपिल पर यशा के शब्दो ने जादू का सा प्रभाव किया। वह गम्भीर हो उठा और बोला—"हां मां तुम ठीक कहती हो मुझे डूब ही मरना चाहिए। मां! मैं अपने पुर्खों के सम्मान की रक्षा न कर सका, अपने वश मे मुझ से अधिक घृणित और मूर्ख कौन पैदा हुआ होगा। पर मां! क्या मैं अब नही पढ सकता ?" "क्यो नही। पढने वाला हो तो किसी भी आयु मे पढ सकता है ?" "तो मां! मै पढूंगा। बस अब मैं पढ़कर ही दिखाऊंगा।"—कपिल का चेहरा कठोर था उसके शब्दो मे दृढ सकल्प की गूंज थी।

अरे तू क्या पढ़ेगा! तुझे तो खेलने से ही छुट्टी नही! पढने वाले को बडा कठोर जीवन व्यतीत करना पडता है।"—यशा ने कहा।

"मैं हर कठिनाई, हर मुसीबत को सह लूंगा। बस अब मुझे पढना ही है। मुझ पर विश्वास करो, अब मैं तुम्हारी आंखो मे आंसू न आने दूंगा।"

एक-एक शब्द पर जोर देते हुए जब कपिल ने कहा तो एक वार यशा ने उसकी ओर खोज पूर्ण दृष्टि डाली और ऊपर से नीचे तक उसका निरीक्षण किया। उसके शब्दो को अपनी बुद्धि की कसौटी पर परखा और कुछ विस्मित हो कर बोली—"क्या सच ? कपिल! तू पढेगा।"

"हां, मां मैं अब तुम्हारे मुंह से अपने लिए बुद्धू शब्द का प्रयोग न सुनूंगा। मैं तुम्हे अब दुखित न होने दूंगा। तुम्हारी आंखो को वरसने न दूंगा। मैं पिताजी की अन्तिम अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए

भरसक प्रयत्न करूँगा। मैं पढ़ूँगा और केवल पढ़ूँगा। —कपिल ने अपना निश्चय सुनाते हुए कहा।

माँ हर्ष विभोर हो उठी। उसने अपनी चूनरी के कोने से अपनी आँखें पोंछ डाली और प्रफुल्लित होकर बोली— 'कपिल! तब तो मेरी मनो कामना अवश्य पूरी होगी।

'बस आज ही से मेरे पढ़ने का प्रबन्ध करो। जब तक मैं पढ़ने न लगूँ। मुझे चैन न मिलेगा।'

माँ ने विचार किया और बहुत देरी तक वह सोचती रही। कपिल बार-बार कहता रहा— 'माँ मुझे बताओ पढ़ना प्रारम्भ करने के लिए मुझे क्या करना होगा।

और माँ के चेहरे की कांति लोप होती रही। अन्त में उसके बदन की सारी प्रसन्नता जा गयी। वह दुखित हो कर बोली— किन्तु कपिल इन परिस्थितियों में तू कैसे पढ़ेगा? इस नगर में यहाँ का राजा शकुनीदत्त की उँगली पर नाचता है तुझे कौन पढ़ने देगा। कौन अपने विद्यालय में तुझे पढ़ायेगा?'

'माँ! तो क्या मैं पढ़ न सकूँगा। प्रयत्न करने पर भी न पढ़ पाऊँगा—कपिल ने दुखित हो कर पूछा।

माँ विचार-मग्न थी। वह मौन रही। वह कोई उपाय सोच रही थी। कुछ देर तक वह विचारों के ताने-बाने में लगी रही और एक बार उसका चेहरा खिल उठा। उत्साह पूर्वक बोली—"हाँ तू अवश्य पढ़ेगा। मैं तुझे अवश्य ही पढ़ाऊँगी। इस नगर में न सही तुझे स्यालकोट भेजूँगी।"

"स्यालकोट किसके पास?'

वहाँ तेरे पिताजी के एक घनिष्ट मित्र हैं। वे तुझे अपने विद्यालय में अवश्य ही भर्ती कर लेंगे।

"तो फिर आज ही, अभी ही भेज दो। मैं आज ही जाऊँगा"—कपिल ने उत्साह प्रकट करते हुए कहा।

"उस ओर जाने वाले किसी व्यक्ति का पता लगा, बस उसी के साथ चले जाना।"—यशा बोली।

"नही, मैं अकेला ही वहाँ चला जाऊँगा। तुम निश्चिन्त रहो माँ। पूछते-पूछते तो ससार भर मे घूमा जा सकता है। कांति का पिता एक वर्ष मे लौटा है देश में घूम कर कहता था कि मुझे रास्ता थोडे ही मालूम था लोगो से पूछ लिया करता था।"

—कपिल ने अपने निश्चय को क्रियान्वित करने के लिए हृदय में उठ रहे उत्साह की लहरो का प्रदर्शन कर दिया।

यशा ने कपिल के दृढ़ निश्चय को देख-कर थोड़ा सा परिवर्तन कराने के लिए कहा—अच्छा तेरी इच्छा शीघ्रातिशीघ्र ही जाने की है' और तू किसी की प्रतीक्षा भी नही करना चाहता, तो आज नही कल चले जाना। मैं तुझे अधिक रोकने का प्रयत्न नही करूँगी। मैं तेरे जाने का प्रबन्ध करती हूँ।"

"तो मैं कल प्रात -काल ही चला जाऊ गा।"—कपिल ने बात पक्की करने के लिए कहा।

"हाँ, हाँ, प्रात ही चले जाना। घबराता क्यो है।"

माँ की बात सुन कर कपिल को बडी प्रसन्नता हुई। सवारी का तमाशा देखना भूल वह अपनी यात्रा की तैयारी में लग गया। प्रसन्नता के मारे यशा के पैर भूमि पर न पड रहे थे।

सात

चारों ओर गहन अन्धकार बिखरा हुआ है। आकाश में न जाने कहाँ रजनी के कजरारे आँचल को ओढ़ कर चाँद सो गया है। उसकी आँख क्या लगी कुमुदिनी का नाम ही नहीं लिया यहाँ धरा पर निस्तब्धता ने गति और जीवन स्पन्दन को डस लिया है। शृगाल बार-बार मुक्त कण्ठ से 'जागते रहो' का शंखनाद कर उठते हैं, इस सुनसान रात में वन-सौंदर्य की रक्षा का ठेका उन्हीं ने ले लिया हो। सूखे वृक्षों पर उल्लू अपनी जलती आँखों की मशाल के प्रकाश में अपराजित भौंरों को खोज रहा है। ताकि तेजपालसिंह की भाँति वह निर्धन साधनहीन विद्यार्थी की 'भोंपड़ियों' के यौवन प्राण हरण कर अपनी क्षुधा शांत कर सके। कभी-कभी रक्षा के लिए जागरूक अथवा अपनी निर्बलता के घरों में छिपे असहाय पक्षी भयभीत होकर फड़फड़ा उठते और वृक्ष के पत्ते भी उनके विहगों की तड़पन से 'खड़-खड़' होकर काँप उठते मानो शाखाओं के दाँत बज रहे हों। 'सायँ-सायँ' करता पवन इस समय भी धरा के हिये की उष्णता की खोज करने के लिए परिभ्रमण-रत है। प्राणों को भय की मार से हिला देने वाली इस नीरवता को भेदती हुई एक काली छाया चली आ रही है। रजनी के काले आवरण ने उसे कालिमा की सजीव मसिलीन प्रतिमा बना दिया है।

अपने विचारों में उलझी हुई, परिस्थितियों और बन्धनों के प्रति घृणा और असन्तोष का भाव लिए वह बढ़ती ही जाती है। शृगालों का रौद्र-नाद हो अथवा अनजाने पक्षियों का तड़पन, वृक्ष-लताओं के चीत्कार हों अथवा नीरवता का भयोत्पादक मौन और चाहे माहे भरने-जाते पवन की वृक्षों, झाड़ों और घास-फूस व निरकण्डों के साथ टकरा कर उभरती चीख, किसी का भी न उसे ध्यान है, न चिन्ता और न ज्ञान ही। विचार विहगों पर उड़ती हुई सी वह जा रही थी अपने रास्ते। मानो उसे दृढ़ विश्वास था कि वह अडिग है अजेय है, जो उससे टकरायेगा स्वयं खण्डित हो जायेगा। वह अभय है और उसकी शक्ति अतुल है। रण-क्षेत्र मे अजेय योद्धा की भाँति वह आगे ही चलती जाती थी, नीरवता का वक्ष चीरती और रजनी के व्यूह को भंग करती हुई।

कहाँ जा रही है, उसे कहाँ पहुँचना है? क्या करना है, कदाचित यह वह स्वयं भी नही जानती। बस वह उस वातावरण से दूर चली जाना चाहती है, जहाँ चार स्वेतों को श्रम धन देकर क्षुधा तृप्ति के लिये अन्न के दाने प्राप्त करने के अधिकार के बदले मे चार प्राणी बिक जाते है। जहाँ यौवन कन्या के लिए अभिशाप बन जाता है। जहाँ गेहूँ का एक दाना एक पिता के सामने दीवार बन कर खड़ा हो जाता है। जहाँ एक कौर के मूल्य म एक अछूती मुस्कान बिक जाती है, और जहाँ मात-पिता अपनी कन्या के भाग्य का निर्णय तक करने का अधिकार नही रखते। वह जाना चाहती है वहाँ जहाँ उसके यौवन को प्यासी आँखो मे देखने वाला कोई शेरसिंह न हो और जहाँ उसकी रूप मदिरा को अपनी सम्पत्ति की चमक मात्र के सहारे कोई बूढ़ा तेजपाल सिंह न खरीद सके। पर वह स्थान कहाँ है? क्या इस धरती पर? उसका मन कहता है नही, धरती मा पर उसके पुत्रो ने स्वामी बन कर भोग लिप्सा का कुकृत्य करने का निर्णय कर लिया है। माँ-बेटों की दासी बन गयी है। धरती सामन्तों की जागीर है। जहाँ धरती कुछ मुट्ठी भर लोगों

की सम्पत्ति बन जाये जहाँ शांति कहाँ मानवता कहाँ कहाँ ? वहाँ चीत्कार हो सकते हैं रुदन भी सकते हैं आहें उमड़ सकती हैं समानता और नारीत्व वहाँ कैसे फल फूल सकते हैं। वह इस धरती से इस विश्व से भाग जाना चाहती है वह वहाँ पहुँचना चाहती है जहाँ पर परमानन्द है, चिर शांति है और ग्लानि तथा रोष का जहाँ प्रवेश निषिद्ध है। और वह वहीं पहुँचेगी जब तक वह वहाँ न पहुँचे उसे चैन न मिलेगा वह चलती रहेगी कदम पर कदम बढ़ाती रहेगी और अपनी मंजिल पर पहुँच कर ही दम लेगी।

रजनी अपने रास्ते चलती रही और मोहनी अपने। न रजनी ने विश्राम किया और न मोहनी ने। पर रजनी को चाह थी और मिलन को और जब वियोगी और स्वयं निकट चला आया तो रजनी उसे एक चुम्बन देकर सिमट गयी लज्जा के वशीभूत होकर वह कहीं जा छुपी उसे उसकी मंजिल मिल गयी। पर मोहनी की मानो मंजिल अभी दूर थी। उसके पैर न रुके वह आगे ही बढ़ती रही। सूर्य ने आकर उसके चरणों में अपनी स्वर्णिम किरणें बखेर दी किरणों के आत्म-समर्पण पर भी मोहनी के अधरों पर मुस्कान नहीं चमकी। तब सूर्य कुपित होकर अपने तेज की समस्त शक्ति संकलित करके उसके मार्ग को अवरुद्ध करने उसका साहस भंग करने को दौड़ा पर शरीर से टपटप श्रम कण चू पड़ने पर भी मोहनी को रुक जाने की इच्छा न हुई। जैसे उसके पीछे शैतान सिंह अपनी गदा लिए भागा चला आ रहा है। पर यदि वह पीछे फिर कर देखती तो उसे ज्ञात होता कि उसके पीछे सिवाय धूम और विस्मित वायु के अतिरिक्त और कोई नहीं आ रहा था। वह कुत्ता जो उसके साथ श्यामपुर से चल पड़ा था गाँव की सीमा पार करते ही वापिस लौट गया था जैसे उसके उत्तरदायित्व की अवधि वहीं तक थी।

भूमि जल उठी मानो सन्ताप से दग्ध हो गयी हो। और जलती धूल मोहनी के चरणों को झुलसाते हुए कहने लगी— आगे मत बढ़

मोहनी, आगे खतरा है, आगे मौत है और मैं तुझे मौत के पास नहीं जाने दूँगी, तू जीवित रह क्योकि इस समाज को तेरे जीवन की आवश्यकता है। मरना ही है तो समाज की वेदी पर वलि हो जा पर कायरो की भाँति सघर्ष से भागना क्या शोभा देता है तुझे ? लौट चल। पर तू नारी है जननी है, करुणा की खान है तो रणचण्डी भी तो तू ही है।"—पर गरम-गरम रेत पर पैर रखती वह आगे ही बढती रही।

"जो नीड जल जाना है, किसी के हाथो राख होना है, उसे मैं अपने हाथो ही राख न करदूँ ?—तिल तिल कर मरने से तो अच्छा है, स्वय अपने हाथो मे उस जीवन का अन्त करदूँ जो आज उसका है, कल जो तेजपालसिंह के हाथो का मदिरा का प्याला बनने वाला था।" —बार-बार उसके हृदय में हूक उठती और वह अपना निश्चय दोहराती।

जो निर्बल होता है जब वह अपने क्रोध को पी नही सकता, मार नही सकता और न निकाल सकता है, तब वह रो पडता है। रोना कायरता की व्यजना है और इस भाव व्यजना का सहारा कितने ही लोग लेते हैं। कायरता घृणित है, फिर भी उसको अपना सम्बल कितने ही लोग बनाते हैं।

मोहनी रोना ही पर्याप्त नही समझती थी वह कुछ और आगे जाना चाहती थी और इसीलिए वह आगे जा ही रही थी।

× × × ×

"रथ रोक दो। गरमी बढ गयी है। देखते नही बैल हाँप रहे हैं। उनके पैर जल रहे होगे। यह मूक प्राणी बोल नही पाते तो क्या हम उन्हे सताते रहे ? दूसरे की स्थिति मे अपने को रखकर सोचा करो तो कभी अन्याय न हुआ करे।"—सेवक को रथ रोकने का आदेश देते देते सेठ शालिभद्र ने सुन्दर उपदेश दे डाला।

उनकी बात समाप्त होते-होते रथ रुक चुका था।

'सामने के वृक्ष के नीचे बैलोंको बाँध दो म र सामान उतार कर आराम का प्रबन्ध करो। निकट ही जलाशय है। बैल भी सुखी रहेंगे और हम भी। दूसरा आदेश देते हुए शालि भद्र बोले।

सेवक ने आज्ञा का पालन किया।

वृक्ष की जड़ में भूमि पर बिछे बिस्तर पर लेटते हुए शालि भद्र ने सेवक को सम्बोधित करते हुए पूछा— 'कल तक तो हम स्यालकोट पहुँच ही जायेंगे।

'हाँ मालिक, आशा तो ऐसी ही है।

'किसी भी प्रकार हमें कल अवश्य पहुँच जाना चाहिए। घर हमारी प्रतीक्षा हो रही होगी और अनेक आवश्यक काम रुके पड़े हैं। गुरुकुल के भवन की मरम्मत मेरे कारण रुकी होगी। मैं उसकी बार एक कमरा और बनवाना चाहता हूँ। छात्रों की संख्या बढ़ रही है।"''नगर वासियों को ऐसा लगता है कि दुग्ध यथेष्ट मात्रा में नहीं मिल रहा। पिछले दिनों चली बीमारी में बहुत गौएं मर गयीं सोचता हूँ एक गौ-सदन और खोल दूँ।"

शालिभद्र बिस्तर पर पड़ा-पड़ा अपनी योजनाओं को व्यक्त कर रहा था और सेवक प्रत्येक बात पर हाँ करता जाता था पर उसका ध्यान अपने काम में था अथवा सेठ की बातों की ओर यह नहीं जाने।

सेठ वाणी का प्रयोग बन्द करके बुद्धि का प्रयोग करने लगा। वह अपनी नवीन योजनाओं पर विचार करने लगा और सेवक भोजन की तैयारी में लग गया। न जाने वह कब तक सोचता रहा जब सेवक ने आ कर उसे भोजन तैयार होने की सूचना दी तो उसकी तन्द्रा भंग हुई और वह स्नान के लिए जलाशय की ओर चला।

एक युवती को श्मशान पर खड़े देख कर वह स्तम्भित रह गया।

मानो उसके पैर भूमि मे गड गए हो। जलाशय की कगार पर सिर उठाये खडो चट्टान पर वह युवती खडी थी और नीचे गहरे, नीले जल को निहार रही थी। यहां वन मे जहां दूर-दूर तक मानव आकृति देखने को नहीं मिलती एक युवती का अनायास ही वहां प्रगट हो जाना आश्चर्य की ही तो बात थी। सेठ ने इधर-उधर दृष्टि डाली, पर दूर-दूर तक कोई भी मानव दिखायी न दिया। "क्या कर रही हैं यह युवती ?" यह प्रश्न उसके मन मे उठा और वह सोचने लगा।

तेजी मे बढा उसकी ओर।

अपने विचारो मे तल्लीन युवती को सेठ के निकट पहुंच जाने का भी आभास न हुआ और ज्यो ही युवती ने नीले जल की कोख में समा जाने के लिए छलांग लगाने की तैयारी की, सेठ शालिभद्र एक आशका से कांप उठा।"कहीं यह आत्म हत्या तो नही कर रही ?"

और यह सन्देह अकुरित होना था कि उसने अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया। ज्योही युवती ने छलांग लगानी चाही, सेठ ने अपनी भुजाओ का प्रयोग करके उसे पीछे खीच लिया।

"यह क्या करती हो ? क्या मरना है ?"—बन्दूक से निकलने वाली गोलियो की गति मे सेठ के मुंह से ये शब्द निकले।

युवती पहले तो एक दम कांप उठी और जब उसने शालिभद्र का अपरिचित मुंह देखा, उसने खिन्न हो कर कहा—"कौन हो तुम ?"

"मैं कोई भी हूं, तुम यह क्या रही थी ?"

गम्भीरता पूर्वक वह बोली—"हट जाओ, मेरे रास्ते से।"

"क्या मरना चाहती हो ?"

"हां।"

"पर क्यो ?"

"तुम्हें क्या ? तुम कौन होते हो मुझ से पूछने वाले ?"

युवती का यह रूप और उसकी ओर से पूर्णतया अवहेलना देख कर शालिभद्र चक्कर में आ गए। क्या करें ? क्या उत्तर दें।

"मेरे सामने से हट जाओ।"

"नहीं मैं तुम्हें मरने नहीं दूंगा।"—शालिभद्र ने उच्च स्वर में कहा।

"तुम कौन होते हो मुझे रोकने वाले ? मैं मरूं या जियूं तुम्हें क्या ?" आवेश में आकर वह बोली। और साहस पूर्वक आगे बढ़ी।

शालिभद्र उसके सामने दीवार बन कर खड़ा हो गया। अपना निश्चय पुन दोहराते हुए उसने कहा—'मेरे जीते जी तुम प्राण नहीं दे सकती।

उसे कुछ सन्देह हुआ अतः आग्नेय दृष्टि सेठ पर डालते हुए उसने पूछा—'सच-सच बताओ तुम कौन हो ?

मैं कोई भी होऊं मेरा कर्तव्य है तुम्हारी रक्षा करना।

सन्देह को बल मिला और उसने क्रुद्ध हो कर कहा—अच्छा तो तुम बूढ़े भेड़िये तेजपाल सिंह के आदमी हो। तुम लोग मेरा पीछा करते हुए यहाँ तक पहुंच गए ? पर मैंने निश्चय कर लिया है तुम्हारे ठाकुर के हाथ अब मेरी मुर्दा देह ही आ सकती है। मैं जीवित उसकी हवेली में नहीं जाऊंगी।

उस समय उसका मुख मण्डल कठोर था। नेत्रों से चिनगारियाँ बरस रही थी।

चकित हो कर सेठ ने पूछा—'कौन तेजपाल सिंह ? मैं तुम्हारी बात नहीं समझा।

चौंक कर वह बोली—'ओह ! कैसे भोले बन रहे हो। जैसे कुछ जानते ही नहीं। बनने और छुपने का प्रयत्न मत करो। सीधो यदि

मेरे स्थान पर तुम्हारी अपनी बेटी होती तो क्या तुम उस बूढे के हाथो उसे सौंप देते ? मै निर्धन, निर्बल और ऋणी बाप की बेटी हूँ बस यही है ना मेरा अपराध। मै कहती हूँ मेरे सामने से हट जाओ, मुझे मर जाने दो। तुम्हारे राज्य मे सुख नही, शाति नही, जो शाति यहाँ है, देखो इस नीले जल मे झाको, यहाँ शाति है, मुझे समा जाने दो इसकी कोख मे।"

शालिभद्र को मामला समझते देर न लगी। उसने कोमल स्वर से कहा—"बेटी ! मुझे बताओ, तुम पर क्या विपदा है ? मुझे सारी गाथा सुनाओ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

सेठ के शब्दो को सुनकर और विशेषतया 'बेटी' के सम्बोधन को सुनकर उसे असीम आश्चर्य हुआ और कही उसने गलत न सुना हो, अपनी इस शका के निवारणार्थ उसने कहा—"क्या तुमने मुझे बेटी कहा ? क्या मैं तुम्हारी बेटी हूँ।"

"हाँ, बेटी, मुझे निस्सकोच भाव से अपनी व्यथा सुनाओ।" विस्मय के साथ-साथ उसे एक शका भी हुई, कही यह धोखा तो नही है, अत उसने पूछा—तुम कौन हो और किसके भेजे हुए हो। सच-सच बताओ। मुझे बेटी कहते हो तो साफ-साफ बताओ।"

"बेटी ! मेरा नाम शालिभद्र है। स्यालकोट का निवासी हूँ और व्यापार कार्य मे अनेक स्थानो का भ्रमण करते हुए अपनी जन्म-भूमि को लौट रहा हूँ। स्नान करने आया था कि तुम्हे देखकर इधर चला आया।"—सेठ ने उसे आश्वस्त करने के लिए अपना परिचय दिया।

उसके नेत्रो मे आँसू छलछला आये और बोली—"सेठजी ! मैं आप से क्या कहूँ। बस आप यदि मुझ पर दया कर सकते हैं तो इतना कीजिए कि मेरे रास्ते मे दीवार न बने। मरने के अतिरिक्त मेरे लिए कोई चारा ही नहीं है।"

'बेटी ! तुम बहुत दुखित मालूम होती हो । क्या अपनी कथा मुझे नहीं बताओगी ?' — सेठ ने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा ।

'क्या कीजिएगा मेरी व्यथा सुनकर—वह भरे हुए कण्ठ से बोली—मैं वह अभागिन हूँ जिसे गाँव का सामन्त एक बूढ़े सामन्त को को मित्रता के कारण भेंट स्वरूप दे रहा है और मेरे बूढ़े माँ-बाप गाँव के सामन्त की भूमि जोतने और उसके ऋणी होने के कारण कुछ करने में असमर्थ हैं । बस मृत्यु के अतिरिक्त और कौन है जो मुझे इस अन्याय से बचा सके । ———बस यही है मेरी व्यथा अब आप हट जाइये देखिये कहीं उन भेड़ियों के व्यक्ति आ गए तो मेरी और यही मुझे मर जाने दीजिए मुझे रोकिए मत । मैं आपके पाँव पकड़ती हूँ मुझ पर दया करो ।

सेठ की पलकें भीग गयीं और हृदय द्रवित हो गया । बोला— "बेटी ! मैं तुम्हारे रास्ते से हटने के लिए नहीं आया । अब तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य हो गया है । और मैं किसी भी दशा में तुम्हारे प्राण न जाने दूँगा ।"

"तो क्या आप चाहते हैं कि मैं बूढ़े शराबी के साथ" ।

'नहीं तो ।

'तो फिर क्या मैं भीख माँग-माँग कर पेट पालने और अनेक दूसरे अत्याचारी व्यभिचारियों के अत्याचारों को सहने के लिए जीवित रहूँ ?'

"नहीं मैं यह तो नहीं चाहता ।

तो फिर मैं क्या करूं ।

"बेटी ! आत्म-हत्या करना कायरता है पाप है अपने प्रति अन्याय है और समाज के प्रति भी अन्याय ही है । तुम तो देवपाल सिंह से घृणा करती हो ?"

"हाँ ।

"किन्तु यदि तुम इस अथाह जल में डूबकर प्राण दे देती हो, तो जीत किसकी हुई ?

"मेरी ।"

"नही तुम्हारी नही, तेजपालसिह की हुई और उसकी हुई जो तुम्हारे गांव का सामन्त है । वह तुम्हें अपनी वासना तृप्ति का साधन बनाकर मार डाले अथवा उनके अत्याचार से घबराकर तुम स्वय मर जाओ बात एक ही है, जीत अत्याचार की ही है । फिर अत्याचार से तुम्हारी घृणा किस काम की ? तेजपालसिह के हाथो से तुम बच निकलोगी तो बच निकलो, समाज मे तुम जैसी और भी कितनी ही अभागिन कन्याएँ हैं, जिन पर तेजपालसिह जैसो की गृद्ध दृष्टि जा सकती है, सोचो तो उनका क्या होगा ? क्या वे भी तुम्हारी ही तरह अपने प्राण दें ? यदि हाँ तो इस प्रकार कन्याएँ प्राण देती रहेगी और तेजपाल सिह जैसे अपने कुकृत्यो की लीला रचाते रहेगे । फिर बोलो विजय किसकी रही ? तुम्हारी या तेजपालसिह की ?"—सेठ ने पूछा ।

"हुआ करे मुझे क्या ?"—वह बोली ।

सेठ ने क्षोभ प्रगट करते हुए कहा—'कितनी छोटी बात कर रही हो ? क्या तुम इतनी सी भी बात नही समझ सकती कि क्या मालूम तुम्हारे जैसी ही बात सोचने वाली तुमसे पहले हुई युवतियो ने प्राण देकर अत्याचारियो का रास्ता साफ किया हो और उनकी भूल के कारण ही जलती रही आग बढते-बढते तुम्हारे जीवन तक आ गयी हो । तुम नही जानती कि अत्याचार के सामने शीश झुकाना या उसके रास्ते से हट जाना दोनो ही समान हैं और दोनो ही दिशाओ मे अत्याचारो का नकारात्मक सहयोग हो जाता है । "बताओ क्या तुम तेजपाल सिह को सहयोग देना चाहती हो ?"

मोहनी सेठ के प्रश्न मे तिलमिला उठी क्या उत्तर दे उसकी समझ मे न आया और परेशान होकर वह बोली—"आप मेरे पिता

तुल्य है आप मुझे क्षमा करें यह बातें मैं न समझ सकूंगी। मुझे आप मर ही जाने दीजिए। मेरे भाग्य में इसी प्रकार मरना लिखा है।"

कौन जानता है तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है? सेठ ने दृढ़ता पूर्वक कहा उस समय उसके मन में मोहनी को सीधे रास्ते पर लाने की प्रबल इच्छा होने के कारण बुद्धि में तर्क और युक्तियों की रचना तीव्र गति से हो रही थी। भाग्य के सम्बन्ध में समझाते हुए उसने कहा—'बेटी! भाग्य का भण्डार हमारी और तुम्हारी आँखों के सामने नहीं खुला हुआ। बन्द मुट्ठी है कौन जाने अन्दर क्या हो? और यदि तुम्हारे भाग्य में आत्म-हत्या ही लिखी है तो बताओ मैं तुम्हारे रास्ते की दीवार बनकर क्यों आ गया?"

मोहनी चक्कर में पड़ गयी।

सेठ ने पुनः अपनी बात आगे बढ़ाई— 'जो लोग भाग्य पर ही विश्वास करके अपनी जीवन-नौका को स्वतन्त्र छोड़ देते हैं, वे प्रायः असफलता और निराशा के भंवर में पड़ कर डूब जाया करते हैं। कायर व्यक्ति ही भाग्य का सहारा लेकर अपने कर्तव्यों से मुंह चुराया करते हैं। जो जीने की कला जानते हैं वे अपने पौरुष द्वारा परिस्थितियों का मुँह मोड़ दिया करते हैं। यह मत भूलो कि भाग्य का निर्माण स्वयं व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा करता है। अपने पौरुष पर, अपनी बुद्धि, कार्य क्षमता और साहस पर विश्वास करने वाले कभी भाग्य की बाट नहीं जोहते वे आगे बढ़ते हैं, अपना काम करते जाते हैं और उनके भाग्य की पर्तें खुलती जाती हैं।"

'तो क्या भाग्य भी बदल सकता है?'

'पूर्व कर्मों के फल भोगने होते ही हैं और उन्हें भोगने के लिए मनुष्यों को तैयार रहना ही चाहिए पर यदि एक मुद्रा का तुम्हें कर्ज अदा करना है और तुम दो मुद्रायें कमालो तो एक मुद्रा देकर उससे

होने के साथ-साथ अपने लिए प्रसन्नता के कुछ क्षण और भी तुम सग्रह कर लेते हो। इसी प्रकार पूर्व कर्मों का दण्डात्मक फल तुम्हारे नवीन सचित पुण्य कर्मों द्वारा क्षय किया जा सकता है। यदि मानलो यह भी न हो तो पुण्य कर्मों द्वारा १ वर्ष का सुख प्राप्त कर लेने पर यदि एक दिन का पूर्व कर्मों वश दुख भोगना भी पडे तो तीन सौ साठ दिन के बाद वह एक दिन तुम्हे इतना भीषण नही प्रतीत होगा कि तुम जीवन से ही ऊब जाओ।

शालिभद्र की बातो को मोहनी एकाग्रचित होकर सुन रही थी उसे ये बाते बिल्कुल नवीन लग रही थी, उसे कुछ आश्चर्य भी हो रहा था और कुछ परेशानी भी, क्योकि कभी इस प्रकार की बाते उस ने किसी के मुंह मे सुनी ही न थी, अत उन्हे पूरी तरह समझ पाना उस के लिए कठिन हो रहा था, पर शालिभद्र उसे एकाग्रचित्त देखकर और उत्साह पूर्वक अपनी बात सुनाने के लिए प्रोत्साहित हुआ। उसने पूछा—"हॉं तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मोहनी।"

"तो बेटी मोहनी! क्या तुम समझती हो कि इस प्रकार प्राणान्त कर देने से तुम उन कर्मो का फल भोगने मे बच जाओगी, जो तुम्हारी आत्मा के साथ बन्धे है ?—कदापि नही। बल्कि इस प्रकार तुम वह अवसर अपने हाथ मे खो दोगी जो तुम्हे कर्मों का क्षय करके सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय और प्रयत्न करने के लिए मिला है। मनुष्य जन्म तो दुर्लभ है कहते है देवता भी मनुष्य जन्म पाने की कामना करते हैं, तो फिर क्या इस जन्म को इस प्रकार नष्ट कर देना बुद्धिमानी कही जा सकती है ?"

मोहनी खिन्न होकर बोली—"आप इस जीवन की रक्षा करने को कहते हैं जिसमे दुख ही दुख है। आपको क्या मालूम मैंने किस प्रकार दिन व्यतीत किए हैं। भूखे पेट से पैदा हुई थी और भूख मे ही

जीवन बिताया है और आज भी सुखी हूँ। अन्तिम समय भी सुखी हूँ।

सेठ का हृदय द्रवित हो गया। वह कहने लगा— 'बेटी! मुझे तुम्हारी बातें सुनकर रोना आता है। पर जानता हूँ रुदन किसी समस्या का समाधान नहीं है। चलो भोजन मेरे साथ करो।'

मोहनी फिर भी वहीं खड़ी रही।

सेठ ने फिर कहा— 'बेटी मोहनी! मैं मनुष्य के पौरुष और साहस पर विश्वास रखता हूँ। मुझे ऋषि मुनियों ने जो शिक्षा दी है वही तुम्हें बताता हूँ। तुम्हारे हृदय में इस समय जो आग जल रही है, वह जलसमाधि द्वारा शान्त हो गयी तो बहुत बुरा होगा। दीप से दीप जलता है। एक चिनगारी से अनेक अंगारे तैयार हो सकते हैं। तुम यदि जीवित रहो और जीवित रहकर ही अपने में यह शक्ति उत्पन्न करो कि मैदान में आकर तेजपालसिंह जैसे नर-पिशाचों को ललकार सको तो तुम्हारी और तुम्हारी जैसी असंख्य बहनों की बेड़ियाँ कट सकती हैं। अपने हृदय की आग दूसरे हृदयों में भी भर दो और फिर तुम अपने माता-पिता का नाम उज्ज्वल करो। कुल का सुखी सन्तानों को ही नहीं विशेष को चिनगारियों को भी जन्म देता है। भाग्य को बदल डालने का संकल्प लेकर चलो और अपने पर विश्वास रखो सब कुछ ठीक हो जायगा।"

'तो क्या मैं शेरसिंह और तेजपालसिंह से बदला ले सकती हूँ?'

हाँ क्यों नहीं मेरे साथ चलो।

कहीं आप मुझे बीच ही में तो धोखा नहीं दे देंगे?"

'नहीं बेटी! मैं तुम्हारे प्राणों की रक्षा इसलिए थोड़े ही कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ तुम अपने पैरों पर खड़ी हो जाओ और अपने जीवन का निर्णय स्वयं करो।

आंखो मे आंसू भरकर मोहनी ने शालिभद्र की ओर देखा, जैसे कह रही हो—"मुझे धोखा मत देना।"

—तो वह शालिभद्र के साथ चली आयी। और भोजन मे निवृत होकर सेठ के आग्रह पर उसने अपनी सारी गाथा आद्योपान्त सुनायी। और तब बोली—आप मेरे लिए साक्षात् देवता बनकर आए हैं। अब मैं आपसे केवल यह विनती करती हूँ कि आप मुझे अपने यहाँ कोई काम देदे और मैं किसी प्रकार अपने दिन काट लूँगी।"

शालिभद्र बोला—"बेटी। मैं कितने ही निर्धनो की सहायता करता हूँ, जब तक तुम चाहो मेरे घर रह सकती हो।"

"नही सेठजी। मैं आपकी इसी दया के भार से दबी जा रही हूँ कि आपने मेरे प्राण बचा लिए, सहारा दिया, अब तो केवल यही चाहती हूँ कि आप मुझे कोई काम सौंप दे और भर पेट भोजन तथा तन के लिए वस्त्र दे दे। हम ठाकुर हैं, पिताजी कहा करते हैं हम लोगो को किसी के आगे भीख के लिए हाथ नही फैलाना चाहिए अपनी कमायी में, चाहे वह कितनी ही कम क्यो न हो गुजर करनी चाहिए।" मोहनी ने विनय पूर्वक कहा।

"ठीक है जैसा तुम चाहो, किन्तु पहले घर तो चलो।"

और मध्याह्नोपरान्त शालिभद्र का रथ जुता। मोहनी सेठ के साथ रथ पर सवार हो गयी, यह जीवन मे प्रथम अवसर था जब वह इतनी बढ़िया सवारी पर बैठी थी, वह बहुत प्रसन्न चित्त और सन्तुष्ट थी।

❀

आठ

साधारण सा एक छोटा सा मकान स्यालकोट के आँचल में निस्तेज सा खड़ा था। जिसमें कुल मिलाकर तीन कमरे और एक रसोयी थी। मकान के सिंह द्वार के दायीं ओर जो कोठरी थी उसमें चारों ओर पुस्तकों को व्यवस्थित रखा गया था और एक द्वार तथा एक खिड़की के इस कमरे के बीचों बीच लकड़ी के आसन पर एक ४५ वर्षीय पण्डितजी सामने रक्खी एक पुस्तक पर अपनी दृष्टि गड़ाए थे। उनके सामने और आसपास कुछ और आसन रक्खे थे जो आगन्तुकों और भेंटकर्त्ताओं के लिए निश्चित थे और पास ही एक दीपदान रखा हुआ था जो पुराना और मैला था पीछे खिड़की के पास लकड़ी की बड़ी सी आलमारी में मैले और मोटे वस्त्रों में बंधे अनेक ग्रन्थ रक्खे हैं। दीवार पर सरस्वती का एक सुन्दर चित्र टंगा है कमरे के चार ताखों में सरस्वती लक्ष्मी विष्णु और शिवजी की पाषाण मूर्तियां हैं और एक कोने में एक छोटी खूंटी पर पगड़ी और गले में डालने का एक दुपट्टा थे सब कमरे के स्वामी के व अलंकार हैं जो उन्हें उनके व्यवसाय के अनुरूप बना देते हैं। कमरे में धूप जलने की गंध आ रही है और धुएं की एक बारीक सी रेखा पवन हिलोरों पर लहराती हुई मन्डरा रही है।

साधारण कपड़े पहने नंगे पांव संकोच और घबराहट के मिश्रित प्रभाव से दबे जा रहे एक युवक ने सामान की गठरी बाहर रखकर धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। पण्डितजी स्वाध्याय में संलग्न हैं उन्हें इतने होते पाये, बल्कि मिट्टी के पैरों आने उस युवक की उपस्थिति का

आभास भी न हुआ। युवक उन्हे सकोच एव विनय पूर्वक देखता रहा। प्रतीक्षा करता रहा कि कब पण्डितजी दृष्टि उठाएँ और कब वह प्रणाम कर अपने आने का कारण बताए। प्रतीक्षा मे न जाने कितना समय बीत गया, पण्डितजी पन्ने उलटते जाते और शाति पूर्वक एक-एक शब्द को अपनी दृष्टि के सहारे अपने मस्तिष्क तक पहुँचाते जाते। "इतनी एकाग्रचित्तता ?"—देखकर युवक चकित रह गया और सोचने लगा मैं भी इसी प्रकार तन्मय होकर पढा करूँगा।—खडे-खडे उसके पैर दर्द करने लगे, पर बैठे तो कैसे ? बिना पण्डितजी की आज्ञा के वह बैठ गया तो कही वह असभ्य न समझा जाये। अत जो हो वह खडा रहेगा और चाहे उसे खडे-खडे सारा दिन ही क्यो न बीत जाये वह उस समय तक नही बैठेगा जबतक वे स्वय उसे बैठने का आदेश न देगे।

कुछ देर बाद पण्डितजी को अनायास ही किसी अन्य पुस्तक की आवश्यकता हुई और उन्होने दृष्टि उठाई, सामने पुस्तक खोजने के लिए दृष्टि डाली तो देखा एक लगभग १६ वर्ष की वय का युवक खडा है। तत्काल युवक ने प्रणाम किया और दयनीय दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा।

पण्डितजी ने एक बार ऊपर से नीचे तक उसका निरीक्षण किया और फिर धूल मे भरे पैरो को देखकर पूछ बैठे—"कहाँ से आये ?"

"कौशाम्बी से।"

पण्डितजी को तनिक विस्मय हुआ।

"क्या कौशाम्बी से ?"

"जी।"

और उसने जेब से निकाल कर एक चिट्ठी उनके सामने रखदी।

पण्डित जी ने एक बार पुन युवक को ध्यान पूर्वक देखा और उसे बैठने का आदेश देकर चिट्ठी पढने लगे। लिखा था—

पूज्य उपाध्याय जी !

पत्र वाहक आपके परम मित्र स्वर्गीय प० काश्यप जी की एक मात्र सन्तान है। स्वर्गीय पण्डित जी के देहावसान के उपरान्त गत ११ वर्ष तक जैसे-तैसे मैंने इसका पालन-पोषण किया। परन्तु उनकी अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति के न मेरे पास यहाँ साधन ही है और न यहाँ की परिस्थितियाँ ही अनुकूल है। उनके संसार से विदा होते ही प० शकुन्दी दत्त जो आज कल राज्य पुरोहित के पद पर आसीन है हमारे घोर शत्रु हो गए और और उन्हीं के कारण कौशाम्बी मे प० काश्यम की सन्तान के लिए विद्याध्ययन असम्भव हो गया है। यहाँ एक भी सहारा ऐसा नहीं जिसके सहयोग से कपिल को पढ़ाया जा सके अस्त' परिस्थितियों वश आपके मित्र की सन्तान अशिक्षित रही जा रही है मैं अपने प्रयत्नों में असफल हो चुकी हूँ अतएव आपके पास इसे भेज रही हूँ ताकि आप इसे अपने संरक्षण मे लेकर विद्याध्ययन करा सकें। इसे आपको सौंप कर मैं निश्चिन्त हो रही हूँ क्योंकि मुझे पूर्ण आस्था है कि आप अपने परम मित्र की सन्तान के प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाने के पूर्ण योग्य है।

मैं हूँ आपके परम मित्र की अभागिनी विधवा
यशा

पत्र पढ़ते-पढ़ते पण्डित जी के नेत्र सजल हो गए। उन्होंने पत्र को मोड़ कर रख लिया और कपिल के प्रति अथाह सहानुभूति प्रकट करते हुए बोले :— 'प्रिय कपिल ! यह तुम्हारा अपना ही घर है। यहाँ निस्संकोच भाव से तुम रह सकते हो। चिन्ता की कोई बात नहीं। हाँ, तुम यहाँ कैसे पहुँचे ?

'पैदल।

और कौन था तुम्हारे साथ ?'

"मै अकेला ही आया था। रास्ते मे अनेक यात्री इधर आने वाले मिलते रहे।"

"किसी सवारी से क्यो नही आये ?"

"पैसे नही थे।"

यह पूछ कर मानो स्वय उपाध्याय जी को ही खेद हुआ, वे बात टालते हुए बोले—"हां कुछ सामान नही है ?'

"है, बाहर रक्खा है।"

पण्डित जी स्वय उठे और उसकी गठरी उठा लाये। घर में गए और कुछ चबौना और एक लोटा जल स्वय ही ले आये। स्वय कपिल के पैर धुलाए और फिर उसे स्नेह पूर्वक जल-पान करा कर बोले—"तो कपिल! तुम अब विश्राम करो बहुत थके होगे। फिर बाते होगी। चलो मैं तुम्हे विश्रामालय दिखादूँ।"

आज्ञाकारी शिष्य की भांति कपिल उनके पीछे-पीछे एक कमरे में गया, जो बाहर वाले कमरे की तुलना में मैला और छोटा सा था। अनेक स्थानो पर लेप उतर गया था और केवल एक आसन उसमे पड़ा था, पीछे की ओर एक खिडकी और ऊपर एक रोशनदान था और कोई सामान उसमे नही था।

उपाध्याय जी बोले—"बेटा! तुम्हारे जैसा मकान आदि तो हमारे पास नही है। एक अध्यापक के पास वैभव का कौन काम ? पर तुम्हे यहाँ स्नेह और विशाल हृदय अवश्य ही प्राप्त होगा। निस्संकोच अपनी आवश्यकताएं बताते रहना।"

"उपाध्याय जी! हमारा घर तो इस घर से भी बुरी दशा में है एक झोपडी ही तो है।"—कपिल ने कहा।

"और वह बडा मकान क्या हुआ ?"

"पिताजी की मृत्यु के उपरान्त ही उसे तो शकुनीदत्त ने ऋण के बदले ले लिया था।"

उपाध्याय जी को यह सुन कर दुःख हुआ। कुछ क्षण दुखित हो कर कुछ सोचते हुए खड़े रहे और फिर बोले— अच्छा तो तुम विश्राम करो बातें फिर होंगी।

उपाध्याय जी स्थानीय गुरु कुल के आचार्य थे नाम था प हर दत्त। माने हुए, षडङ्गसांगिष्णात् शिक्षाशास्त्री थे प काश्यप के सहपाठी थे उनका दूर-दूर तक बहुत मान था पर अपनी ख्याति को कभी वे धन प्राप्ति का साधन न बनाते थे गुरुकुल से भी इतना ही लेते जिसमें उनका साधारण जीवन-यापन हो सके, संग्रह की कामना न थी। साधारण वेष भूषा उन्हें प्रिय थी अधिक समय पठन-पाठन में ही व्यतीत करते थे। अपने मित्र की सन्तान को अपने पास पा कर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई थी पर जो उत्तर दायित्व उन्हें सौंपा गया था उसकी गुरुता को अनुभव करके वे चिन्तित हो उठे थे। कपिल की शिक्षा की तो उन्हें चिन्ता ही क्या होती वे स्वयं इस काम म दक्ष हैं ही पर उसके रहन-सहन और भोजन वस्त्र का प्रबन्ध क्या होगा यही समस्या थी जिसका समाधान उन्हें करना था। मन में उथल-पुथल होती रही। विचारों का मंथन होता रहा।

जब कपिल सोकर उठा, पण्डितजी ने उसे अपने कमरे में बुलवा लिया और स्नेह पूर्वक अपने पास बैठा कर उन्होंने वार्तालाप आरम्भ किया। उपाध्याय जी ने पूछा—"तुम्हारी माता जी तो सकुशल है।

"जी हाँ।"

"घर का खर्च कैसे चलता है?"

"माताजी वस्त्र धोने और सूत कातने आदि का काम करती है?"

"तुम्हारे पिताजी के पास तो यथेष्ट धन था उसका क्या हुआ?"

पिताजी के देहान्त के दो दिन पश्चात ही सब कुछ चोरी चला गया।

उपाध्याय जी को यह सुन कर बड़ा आघात लगा।

"अच्छा तो कपिल अब तक तुम क्या किया करते थे ?"

लज्जित हो कर बोला—"मैं क्या कहूँ, क्या करता था। मेरी बुद्धि फिर गयी थी। खेलने और कूदने से ही मुझे छुट्टी नही मिलती थी अब जब मुझे ज्ञान हुआ तो वहा कोई मुझे पढ़ाने को तैयार नही हुआ। पर मैंने निश्चय किया है कि जैसे भी हो मैं पढूंगा, चाहे कितनी हा कठिनाइयाँ आयें भूखा और नगा रह कर भी मैं पढूंगा। आपकी कृपा रही तो मैं शीघ्र ही उन्नति की ओर चल निकलूंगा।

"तुम्हारा उत्साह तो प्रशसनीय है उपाध्याय इन्द्रदत्त ने कहा—पर विद्यायन के लिए केवल उत्साह ही यथेष्ट नही।"

"और क्या चाहिए ?'—उतावलपन मे कपिल पूछ बैठा—"जो और चाहिए मै वह भी करूंगा।"

"बेटे! विद्याध्ययन एक साधना है और साधना बिना साधन के तो नही होती"—इन्द्रदत्त बोले।

"क्या वे साधन मुझे प्राप्त नही हो सकते ?"—कपिल ने चिन्तित होकर कहा।

"प्राप्ति की इच्छा ही तो किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए पर्याप्त नही है।"

"तो फिर ?"

"बस इसी समस्या का हल खोजने मे तो मै लगा हूँ।"

व्यग्र हो कर कपिल बोला—"आप मुझे बताइये, क्या साधन चाहिए, मैं उन्हे जुटाने मे रात दिन एक कर दूंगा। परिश्रम करने में कोई कमी न छोड़ूंगा। यदि आप एक बार हिमगिरि के शिखर से भी कुछ लाने को कहेगे तो मै वह भी लाऊंगा।"

तुम्हारा यह उत्साह मुझे भी प्रोत्साहित कर रहा है गम्भीरता पूर्वक इन्द्रदत्त बोले — इतनी लगन हो तो फिर सफलता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

'फिर कौनसी समस्या है ?

'कपिल तुम बच्चे तो नहीं हो। हमारी दशा देखकर तुम हमारे साधनों को समझ ही गए होगे। गुरुकुल से जो मिलता है उसमें किसी प्रकार हम गुजारा कर पाते हैं। सोचता हूँ तुम्हारे भोजन आदि की क्या व्यवस्था होगी ?" —चिन्तित उपाध्याय गम्भीरता पूर्वक बोले।

कपिल ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और कहा— तो यह बात है। पण्डितजी ! क्या इस नगर में कोई भी साधन सम्पन्न दानवीर नहीं है। मैं तो ब्राह्मण हूँ। कोई न हो तो कहीं मुझे कुछ काम ही दिला दीजिए मैं— —।

बीच ही में प्रसन्न चित्त होकर उपाध्याय इन्द्रदत्त बोल उठे— 'कपिल ! समस्या का समाधान मिल गया। ठीक है तुम ब्राह्मण पुत्र हो इतना ही बहुत है। अच्छा तो तुम निश्चिन्त होकर भोजन कर लो और फिर मेरे साथ चलो। मैं आज ही तुम्हारा प्रबन्ध करता हूँ। कपिल ! तुम्हें मैं निराश नहीं करूंगा। अपनी समस्त शक्ति तुम्हारे लिए लगा दूंगा।"

कपिल प्रसन्न हो उठा।

× × ×

स्यालकोट के बीचोंबीच एक विशाल अट्टालिका सारे नगर का आकर्षण बनी हुई है बिल्कुल उसी की भाँति जैसे अंगूठी में रत्न का नगीना शोभा का केन्द्रबिन्दु बना रहता है। यह गगन चुम्बी अट्टालिका जिसके सिंह द्वार पर प्रत्येक समय रक्षकों का पहरा लगा रहता है

और जहाँ दर्शकों की भीड सी लगी रहती तत्कालीन कला के सग्रहालय के रूप मे तो है ही, साथ ही इसके स्वामी से० शालिभद्र की दानवीरता और व्यवहार पटुता नगर-निवासियो के लिए आकर्षण का, कारण बनी रहती है और इसीलिए कितने ही लोग अट्टालिका मे केवल इसलिए जाते हैं ताकि वह सेठजी से आवश्यक सहायता प्राप्त कर सके। कलाकृतियो का विपुल सग्रह इसलिए नही है कि सेठजी कलाप्रेमी हैं वरन् इसका मुख्य कारण यह है कि जिस उच्च श्रेणी की कलाकृति का कोई मूल्य नही दे पाता उसे सेठजी कलाकार को प्रोत्साहन देने और कला के क्षेत्र मे विकास का पथ प्रशस्त करने के लिए खरीद लेते हैं। देश-विदेश मे फैले व्यापार को शाखाओ से खीच-खीच कर बडी धन राशि प्रतिवर्ष इसी अट्टालिका मे एकत्रित होती रहती है। अत सागर से कुछ बून्दे प्राप्त कर कुछ लोग सागर की अनुकम्पा के लिए आभारी होते हैं और सोचते हैं कि उन पर दया का भण्डार खोल दिया गया, पर सागर कुछ बूँदो के चले जाने से कगाल नही होता। प्यासे बादल अपना पेट भर कर उड जाते हैं और फिर जब वह कही जाकर बरस पडते है तो उनकी रग-रग से बरसा जल यथेष्ट मात्रा में जलधाराओ, सरिताओ द्वारा पुन सागर की गोद मे पहुँच जाता है और यह चक्र इसी प्रकार चलता रहता है। किन्तु चक्र का रहस्य समझना प्रत्येक प्राणी के तो बस की बात नही है।

जब अट्टालिका के स्वामी सेठ शालिभद्र व्यापार कार्य से बाहर गए थे, नगर-निवासियो को कुछ कमी खटकती रही थी। पर जब से वे लौटे हैं एक विशेष चहल-पहल अट्टालिका मे और उसके आस-पास हो गयी है। सेठजी बहुत व्यस्त है और दर्शनार्थियो और भेटकर्ताओ की भीड प्रतीक्षालय मे लगी है।

अपने निश्चित कमरे मे बैठे सेठजी अपने मत्री के साथ कुछ बातें कर रहे हैं उसी समय एक कन्या ने प्रवेश किया। गौर-वर्ण, छरहरी देह, पद्मनयन, सकुचित भाल, पद्मानन, के रूपरग से कपोल, पतले

प्रोष्ठ, गोल मुखचन्द्र मध्यम कद और साधारण वस्त्रों में भी यौवना-भ्युत्थान रूप सुरा छलकती जा रही है। भुजाएँ मोम और हाथ हैं और हथेलियाँ कठोर यह उसके श्रमजीवि होने का प्रमाण है।

सेठजी ने सरदम उठाकर देखा। चेहरे पर मुसकान उभर आई। बोले—आओ बेटी! क्या यात्रा की थकान से मुक्ति मिल गयी?'

खड़े-खड़े ही वह बोली— 'तीन दिन हो गए आराम करते सोते और खाने पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। फिर थकान क्या अब भी न उतरती?'

बैठ जाओ। खड़ी क्यों हो?
आदेश पाते ही वह बैठ गयी।

'हाँ! सेठजी इस प्रकार कब तक खाली पड़ी रहूँगी?' —वह बोली। उसका शीश स्वाभाविक लज्जा से झुका हुआ था।

"अभी और आराम करो। स्वस्थ हो लो। फिर ऐसा तो कोई काम रुका नहीं पड़ा जो तुम्हारे बिना हो ही न सके —सेठजी ने कहा।

मुझे खाली पड़ना अच्छा नहीं लगता। कब तक खाली पड़े पड़े खाए जाऊँगी। मुझे कोई काम दीजिए। —वह बोली।

हँसकर सेठजी ने कहा— अच्छा जैसा तुम चाहो। मैं कोई काम सोचूँगा। ज्योंहि काम समझ में आयेगा तुम्हें बता दूँगा। तब तक तुम आराम करो। मैं व्यस्त अधिक हूँ। बहुत दिनों का काम रुका पड़ा है तनिक इस भार से छुट्टी पा लेने दो। हाँ, तुम्हें कोई परेशानी तो नहीं?'

"आपके रहते परेशानी कैसे हो सकती है। ऐसे अच्छे कमरे में इतने आराम से तो मैं अब तक नहीं रही।

'देखो बेटी मोहनी जब कोई परेशानी हो मुझसे अवश्य कहना।

गृ होने की कोई बात नहीं।' —मोहनी के उत्तर से उनका मन प्रसन्न होकर शान्तिभद्र ने कहा।

नमस्कार करके ज्योंही मोहनी वहाँ से अन्तःप्रासाद की ओर खुलने वाले द्वार से निकली, तभी प्रतीक्षालय की ओर से खुलने वाले द्वार से एक सेवक ने आकर सूचना दी कि प० इन्द्रदत्त जी उपाध्याय पधारे हैं। सेठजी ने सेवक को उन्हें तुरन्त अन्दर भेज देने का आदेश दिया।

उपाध्यायजी ने एक युवक के साथ प्रवेश किया। सेठजी ने स्वयं ही नमस्कार करके उन्हें आसन दिया और कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् युवक को लक्ष्य करके बोले—"बेटे तुम भी बैठो।"

"उपाध्यायजी! आज कैसे कष्ट किया? कोई सेवा?"—सेठजी ने विनय पूर्वक पूछा।

"आपको कष्ट देने ही आना हुआ।"—उपाध्यायजी बोले।

"नहीं आज तक तो आपके द्वारा कोई कष्ट हुआ नहीं कष्ट तो तब होता है जब कोई काम अन्तःकरण की रुचि के विरुद्ध होता है।"—सेठजी बोले। तो मैं, इसलिए उपस्थित हुआ था—उपाध्याय जी ने कहा—यह युवक जो मेरे साथ है। बहुत ही निर्धन, पर परिश्रमी एव उत्साही है। विधवा माँ की एकमात्र सन्तान है। इसके सम्बन्ध मे कुछ कहना है।'

'हाँ, हाँ अवश्य कहिए।" उत्साह पूर्वक सेठ ने कहा।

"आपने प० काश्यप का नाम तो सुना होगा?"—उपाध्यायजी ने प्रश्न किया।

शान्तिभद्र अपने मस्तिष्क पर जोर देने लगे, तभी उपाध्यायजी बोल उठे—वही स्वर्गीय काश्यप जी जो कौशाम्बी के राज पुरोहित थे, मेरे सहपाठी और अपने युग के विद्वानों में अग्रणी।'

शालिभद्र को याद आ गया और बोले — हाँ क्यों नहीं पर सुनते हैं उनका तो स्वर्गवास हो गया और अब कोई और ही कौशाम्बी का राज-पुरोहित है।"

"जी हाँ आपने ठीक सुना—उपाध्यायजी ने समर्थन करते हुए कहा—उनका स्वर्गवास हुए तो १२ वर्ष हुए। बस उनका देहावसान होना था कि उनके परिवार पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। घर में चोरी हो गयी और जो कुछ था सभी चला गया मकान आदि व बरतन में यज्ञदत्त ने जो कि इस समय राज्य पुरोहित है सम्भाल लिया। काश्यपजी की धर्म पत्नी बेचारी मजदूरी करके पेट पालती है। एक मजदूरिन अपने बालक को भला कैसे पढ़ा सकती है? जब कुछ उपाय न बना तो उसने अपनी एक मात्र सन्तान इस युवक को मेरे पास भेजा है यह काश्यप पुत्र कपिल है। विद्याध्ययन करना चाहता है पर न रहने का ठिकाना है और न भोजन वस्त्र की व्यवस्था यदि आप की कृपा हो जाय तो यह निर्धन ब्राह्मण युवक पढ़ सकता है।"

सम्भव है कि कौशाम्बी नरेश ने अपने स्वर्गीय राज-पुरोहित की एक मात्र सन्तान के शिक्षण तक का प्रबन्ध न किया उपाध्याय श्री इन्द्रदत्त के समस्त वक्तव्य को ध्यान-पूर्वक सुन कर शालिभद्र ने कहा—जो राज्याश्रय अपने सामाजिक पुरुषों की और कर्मचारियों की मृत्यु तक की सहायता नहीं कर सकता उस अयोग्य राज्य प्रभु को अधिकारच्युत हो जाना चाहिए।

उपाध्याय जी ने तुरन्त कहा—'सम्भव है नव नियुक्त राज पुरोहित ने ईर्ष्यावश अपने अधिकार का प्रयोग कर राजा को कर्तव्य विमुख कर दिया हो। ईर्ष्या तथा तृष्णा तो सब कुछ कर सकती है।

"कदाचित् इन्द्रदत्त जी के उत्तर से सन्तुष्ट होकर ही शालिभद्र ने इस सम्बन्ध में और कुछ न कहकर कहा—"उपाध्यायजी! आप तो जानते ही हैं, जो सम्पत्ति मेरे पास है वह सब देश की जनता की ही धरोहर है। मैं तो केवल उसके सम्भालने और उसकी रक्षा करने का काम करता हूँ। देश के किसी भी नागरिक को यदि इससे सहायता करना उचित होता है और सम्भव भी—तो मैं कोषाध्यक्ष की भाँति आवश्यक धनराशि इसमें से निकाल कर दे देता हूँ। यद्यपि विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का इस वर्ष का निश्चित कोष एक प्रकार से समाप्त हो रहा है। फिर भी मैं हार्दिक रूप से इस विद्यार्थी की सहायता करने को तैयार हूँ। आप जो कहें?"

छात्र वृत्तियों की निश्चित धनराशि समाप्त हो रही है, यह जान कर उपाध्याय जी चिन्तित हो गए, सोचने लगे कि अब वे कहें भी तो क्या कहे? कैसे कहे कि आपको कपिल के पूरे व्यय का उत्तरदायित्व लेना होगा। उन्हें चिन्तित देख सेठ ने कहा—"आप तो बहुत सोच में पड़ गए। अच्छा चलिए मैं अपनी ओर से कहे देता हूँ। इस विद्यार्थी के भोजन का भार मैं वहन करूँगा। और वस्त्रों का व्यय आप गुरुकुल की निर्धन छात्रों की सहायता धनराशि में से दिला दें।"

उपाध्यायजी को यह सुनकर बहुत सन्तोष हुआ, पर एक समस्या और रह गयी थी, उसे भी हल करने के लिए उन्होंने कहा—"आपका बारम्बार धन्यवाद, यह सहायता आपने इस विद्यार्थी की नहीं वरन् मेरी की है—हाँ एक समस्या और रह गयी है, प्रश्न है कि यह बेचारा रहेगा कहाँ। गुरुकुल में अब कोई स्थान रिक्त नहीं है।"

शालिभद्र भी कुछ विचार मग्न हो गए और कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त उन्होंने कहा—"अच्छा आप इसे हमारे प्राचीन मकान में भेज दीजिए। आपके गुरुकुल के निकट भी है और उसमें एक कमरा खाली भी है। शेष तो भरे हुए हैं।"

उपाध्याय पुलकित हो उठे और उनका बारम्बार धन्यवाद किया और उठते हुए बोले— 'तो फिर कल से कपिल आपके यहाँ भोजन के लिए आ जाया करेगा।"

'नहीं इसे आने की क्या आवश्यकता है यह बेचारा यहाँ इतनी दूर आया करेगा और न जाने यहाँ कभी देर हो जाया करे तो इसकी शिक्षा की हानि होगी समय का भी दुरुपयोग होगा। देखिये मैं अभी आप बैठिए मैं इसकी व्यवस्था अभी ही किए देता हूं। – सेठ ने कहा। उपाध्याय जी फिर वहीं बैठ गए।

शालिभद्र ने सेवक को बुला कर आदेश दिया कि मोहनी को बुला लाए। और उपाध्याय जी को सम्बोधित करते बोले— 'एक दुखी कन्या मेरे यहाँ आयी हुई है वह काम चाहती है, ठाकुर की सन्तान है बिना काम किए हमारा खाना वह उचित नहीं समझती। अभी-अभी आपके आने से पूर्व मेरे सामने यह समस्या थी कि उस को क्या काम सौंपा जाये। आपकी समस्या ने यह समस्या हल करदी।"

इस बात पर उपाध्याय जी हंस पड़े और शालिभद्र भी हंसने लगे।

मोहनी के आते ही सेठ बोले— 'तुम कहती थीं कि तुम से खाली नहीं रहा जाता बिना काम किए खाना उचित नहीं जच रहा था तो लो तुम्हें काम मिल गया। आज से ही तुम प्रति दिन इस विद्यार्थी के लिए भोजन लेकर हमारे पुराने मकान चली जाया करना। इस की भोजन सम्बन्धी पूर्ण दायित्व तुम्हारा है। वह मकान कोई आदमी तुम्हें दिखा आयेगा। यह एक काम तो है ही निर्धन ब्राह्मण छात्र की सेवा का पुण्य भी तुम्हें मिलेगा।"

मोहनी ने एक दृष्टि कपिल पर डाली और आज्ञाकारणी की भांति इस सेवा कार्य को स्वीकार कर लिया।

× × ×

एकाग्रचित्त हो कर किसी कार्य मे तन्मय हो जाना ही निस्सन्देह सफलता की कुञ्जी है। जब कोई व्यक्ति सकल्प करके किसी कार्य मे जुट जाता है और निश्चय कर लेता है कि जो भी विपत्तियां उसके रास्ते मे आयेगी उन्हे वह सहर्प सहन कर के और कठिनाइयो पर साहस और परिश्रम से विजयश्री प्राप्त करके आगे ही वढेगा, तव कोई कारण नही कि वह अपनी साधना के द्वारा साध्य को प्राप्त कर सफल साधक वन कर गर्व से सिर ऊंचा न करले। कहते हैं कठिनाइयां श्वान वृत्ति की होती हैं, पहले वह भयकर रूप धारण करके पथिक के सिर चढ जाने का प्रयास करती हैं, यदि पथिक निर्भय होकर उनके सामने डट जाये तो वे एक वार कुपित हो कर आक्रमण करती हैं और जव पथिक अपने साहस और दृढता का डण्डा लेकर उनकी ओर दौडता है तो वे दुम दबा कर भाग जाती हैं। वानर प्रवृति भी कुछ ऐसी हो होती है, जो उनकी घुडकी मे आगया और मैदान छोडकर भाग निकला उस के पीछे वह साहस पूर्वक दौडते हैं बल्कि उसके पास जो कुछ होता है वह भी छीन लाते है पर यदि पथिक घुडकियो से भयभीत होकर जाता है तो वानर सेना पीछे हट कर अपना रास्ता नापती है। विपत्तियो और कठिनाईयो का भी ठीक यही स्वभाव है। बल्कि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि विपत्तियां मनुष्य के साहस और सहनशीलता की परिक्षा के लिए ही आती है जो साहसी साधक होते है उनकी साधना का सूत्र विपत्तियो के प्रहार के पश्चात भी नही टूटता पर जो साधना को दुरुहता को समझे बिना साधना करने निकल पडते है वह विपत्ति आघातो मे भयभीत होकर असफलता और निराशा के गर्त में

जा पहुंचे हैं। उपाध्याय श्री इन्द्रदत्त ने विद्याध्ययन सम्बन्धी समस्त कठिनाईयों का विवरण देते हुए और इस के लिए आवश्यक कठोर परिश्रम और एकाग्र चिन्ता की अनिवार्यता पर प्रकाश डाल कर कपिल को पहले ही ठोक बजा कर देख लिया था। कपिल को एक ही धुन सवार थी किसी प्रकार शिक्षा प्राप्त कर योग्यता के उच्च शिखर पर पहुंचू और अपनी माँ की व्यथा को समाप्त कर उसे सन्तुष्ट कर दूं। दृढ़ता और क्षेम दूर ही जिसका एक मात्र कार्य था वह आज्ञाकारी परिश्रमी और विद्यार्थी बन कर सरस्वती मन्दिर का पुजारी बन गया। प्रात से-साय और साय से भोर तक एक ही चिन्ता उसे रहती किसी प्रकार सरस्वती का वरद हस्त उसे प्राप्त हो। किसी प्रकार उस के लिए भी ज्ञान और विद्या के द्वार खुल जायें। उसके अन्तर मे व्याप्त अविद्या का घोर तिमिर छुट जाय और उसकी बुद्धि प्रकाश होकर उस दीप्तिमान ज्योति को प्राप्त करे जिसका कभी ह्रास नहीं होता बल्कि जिसका उपभोग उसके कोष मे निरन्तर वृद्धि का कारण बनता है। कपिल उस धन की प्राप्ति मे जुट गया जिसे कोई भी डाकू चुरा नहीं सकता और जिसको कोई अकुलीनवश क्षति नहीं पहुंचा सकता। कूप की मन कठोर पाषाण शिलाओं से बनी होती है पर कोमल सूत धागों से से बनी रस्सी की रगड़ मे पाषाण को कठोर देह भी घिसती चली जाती है रस्सी अपनी डगर के चिह्न स्वयं अमिट कर देती है। जल की धारा हिमगिरि शिखरों से गिरते शिलाओं को बहा लाती है और अपने कोमल एव शीतल प्रवाह में उसे घिस घिस कर छोटे-छोटे कंकड़ों में परिणत कर देती है। इसी प्रकार निरन्तर परिश्रम और सवर्ष के द्वारा नवीन ज्योतियाँ जन्म ले लिया करती हैं। १६ वर्षीय युवक कपिल की मन्द बुद्धि भी निरन्तर परिश्रम के कारण कुशाग्र होती चली गयी और वह शिक्षा के क्षेत्र मे निरन्तर वृद्धि की ओर बढ़ता चला गया। कठिनाई मे ६ घण्टे काठासन पर सोता और १८ घण्टों में से भोज नादि तथा उपाध्यायजी के कभी-कभी निकल जाने वाले कार्यों को पूर्ण

करने के समय को छोड़कर शेष समय पुस्तको में डूबा रहता। कक्षा में बैठकर एकाग्रचित हो कर उपाध्याय जी के मुख से निकलने वाले एक एक शब्द को सुनना और हृदयगम करना घर आकर पाठ को कण्ठस्थ-कर लेना और लेखन अभ्यास करना, यही थी उसकी दिनचर्या। उपाध्यायजी उसके परिश्रम को देखकर बहुत प्रसन्न थे। बल्कि कुछ ही दिनो में वे अपने अन्य शिष्यो को कपिल के पद चिह्नो का अनुसार करने का उपदेश करने लगे। उस समय जब कि गुरु उस को आदर्श विद्यार्थी कह कर पुकारते कपिल को कितना गर्व होता, कितनी प्रसन्नता होती? वह घर आकर और अधिक परिश्रम करने मे जुट जाना। पर प्रत्येक सध्या को उपाध्यायजी के घर जाकर सेवा कार्य पूछने और यदि कोई आदेश मिले तो उसका पालन कर उन्हे सन्तुष्ट करने मे न चूकता। एक प्रकार से कपिल के जीवन मे एक बहुत बडा परिवर्तन आ चुका था, परिवर्तन का यह रूप उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करता था। कभी-कभी वह अपने गत जीवन पर विचार करके दुखित हो उठता था उसे अपने आप पर लज्जा आती थी और यही आत्म-ग्लानि का भाव उसे उन्नति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा भी देता था।

कठोर परिश्रम के कारण उसके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ा और और वह दिनो दिन कमजोर होता गया पर इस ओर कपिल ने स्वय कभी ध्यान ही नही दिया। एक दिन उपाध्यायजी ने इस ओर ध्यान दिलाने के लिए कहा—"कपिल। देख रहा हूँ तुम्हारा स्वास्थ्य गिरता जा रहा है, क्या कारण है?"

मानो कपिल को कोई विस्मयजनक सूचना अनायास ही मिली हो, चकित होकर कहा—"गुरुदेव। यदि ऐसा है तो मैं इसका कारण अवश्य ही खोजूँगा।"

अब उपाध्याय जी को आश्चर्य हुआ बोले— क्या तुम्हें अभी तक ज्ञात नहीं है कि तुम कमजोर होते जा रहे हो ?"

अपनी इस अनभिज्ञता पर खेद प्रगट करते हुए कपिल ने कहा— "गुरुदेव ! इस भूल के लिए क्षमा प्रार्थी हूं । मुझे वास्तव में कभी इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला ।"

उपाध्यायजी अध्ययन के प्रति उसकी तन्मयता को समझ कर सहानुभूति पूर्वक स्वास्थ्य की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए बोले— 'कपिल ! तुम्हारी अध्ययन के प्रति आसक्ति प्रशंसनीय है । इतने एकाग्रचित हो कि तुम्हें स्वयं अपना भी पता नहीं । परन्तु स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता ठीक नहीं ।

गुरुजी ! इस देह के प्रति आसक्ति का भाव तो क्यों रहा है पर देह प्रिय होने से क्या लाभ ? मुझे तो अपने लक्ष्य की चिन्ता रहती है और यह चिन्ता ही मुझे सभी ओर से विरक्त रखती है । —कपिल ने कहा ।

'कपिल ! तुम्हारे शरीर की कांति मिटती जाती है इसकी ओर तुम्हें ध्यान देना ही चाहिए । —पुन उपाध्यायजी ने जोर देकर कहा ।

'शरीर की कान्ति किस काम की मैं तो बुद्धि को कांतिमान बनाने में जुटा हुआ हूं ।" उपाध्याय जी की चिन्ता से प्राप्त समझ को प्रगट करते हुए कपिल कह गया ।

इन्द्रदत्तजी ने अनुभव किया कि कपिल अर्थ का अनर्थ कर रहा है अतएव वे उसके तर्क को काटते हुए बोले— 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क, स्वस्थ बुद्धि का वास होता है । माना देह के प्रति आसक्ति व्यर्थ है पर देह तो अन्तःकरण का वाहन है यदि वाहन आगे चलने योग्य न रहे तो आत्मा अपने पवित्र लक्ष्य की ओर किसके पैरों चलेगा । देह को स्वस्थ रखना उसके प्रति आसक्ति नहीं है । तुम जा

पुस्तक पढ़ते हो उसमे मोह नही होना चाहिए, पर उसकी रक्षा करना उसे ठीक रखना भी तुम्हारा कर्तव्य है क्यो कि उसके पन्नो पर वह ज्ञान विद्यमान है जिसकी तुम्हें आवश्यकता है। अत ज्ञान के प्रति आसक्ति पुस्तक की रक्षा के कर्तव्य का विधान कर देती है। इसी प्रकार देह के दास तो न बनो कि उसे सजाने और उसकी सेवा में ही लगे रहो, पर उसे इस योग्य अवश्य ही रक्खो कि वह तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति मे साधन बन सके। बिल्कुल उसी भांति जैसे सैनिक अपने अस्त्र की रक्षा करता है।"

अपनी विवशता प्रगट करते हुए कपिल ने कहा—"किन्तु गुरुदेव ! अध्ययन से अवकाश ही कहाँ मिलता है जो मैं देह के प्रति कुछ कर सकूँ।'

एकागी होना तो कदापि उचित नही ठहराया जा सकता—इन्द्रदत्त ने कहा—यदि तुम भोजन करने के लिए समय निकाल सकते हो, सोचने के लिए तुम्हे अवकाश मिल सकता है तो व्यायाम और योगासनो के लिए क्यो नही अवकाश मिलेगा ? यह भी विद्याध्ययन के साथ आवश्यक है।"

आज्ञाकारी शिष्य की भांति उसने गुरुदेव की बात को स्वीकार किया और विश्वास दिलाया कि वह अपने स्वास्थ्य की ओर भी अवश्य ही ध्यान देगा।

कौशाम्बी की ओर से जब भी कोई व्यक्ति आता होता और यशा को उसका पता चल जाता वह दो पत्र उसके हाथ अवश्य ही प्रेषित करती, एक उपाध्याय जी के लिए और दूसरा कपिल के लिए। जब प्रथम बार कपिल का स्वलिखित पत्र यशा को मिला था, तब उसे असीम हर्ष हुआ था और उल्लसित होकर उसने किसी प्रकार बचत करके कुछ वस्त्र और कुछ मिठाई भेजते हुए लिखा था—

कादम्ब परिवार के उज्ज्वल नक्षत्र

प्रिय पुत्र कपिल !

चिरायु हो लक्ष्य प्राप्ति करो—

तुम्हारे पत्र को देखकर मेरा हृदय उल्लास की उत्ताल तरंगों से ओतप्रोत हो गया। तुम्हारा पत्र उस स्वप्न की पूर्ति की आशा की प्रथम किरण की भाँति पहुँचा है जिसे मैं तुम्हारे यहाँ से विदा होने के समय से देख रही हूँ मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। इतनी दूर होते हुए भी मेरी स्नेह पूर्ण आँखें तुम्हारी ओर देख रही हैं। मेरे हृदय की एक-एक धड़कन में तुम्हारे प्रति मेरे असीम प्यार की व्यंजना होती है। तुम मेरी मह पूँजी हो जिसकी रक्षा करने के लिए मैं अपना सब कुछ दाँव पर लगाने से भी न झिझकूँगी। अपने स्वर्गीय पिता की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति के लिए तुम प्रगति की राह निर्विघ्न बढ़ते रहो यही कामना है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में जीवित हूँ जब तुम योग्य बनकर यहाँ लौटोगे। तुम्हारी माँ तुम्हारे बहुत निकट है उसे दूर समझ कर *उद्विग्न मत होना। अपने गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करना और समय* समय पर अपनी प्रगति की सूचना मुझे देते रहना।

मैं यहाँ सुखी हूँ और तुम्हारे अध्ययन की साधना ने तो मेरी देह में नए प्राण अनुप्राणित किए हैं।

तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य की कामना में

तुम्हारी माँ

मथा

माँ का प्रेरणात्मक पत्र पाकर कपिल को बहुत सन्तोष हुआ था बल्कि उसे ऐसा लगा था मानो उसे अपने परिश्रम का हाथों हाथ फल मिल रहा हो। उसे अध्ययन में और भी उत्साह पूर्वक जुट जाने की प्रेरणा मिली थी और जब वह रात्रि का दीपक गुल करके सोता, तब

वह एक वार अपनी कल्पना में माँ का चित्र खींच कर हाथ जोड़ देता और कहता—"माँ ! तुम्हारे आशीर्वाद से आज का दिन प्रगति के इतिहास के एक पृष्ठ को पूर्ण कर चुका, मैं सन्तुष्ट हूँ आशीर्वाद दो कि भावी प्रात मेरे लिए सफलता का एक और द्वार खोले।"

निर्धन पर श्रमजीवि यशा अपना पेट काट-काट कर कुछ पैसे एकत्रित करता और उनसे वस्त्र, मिठाईयाँ आदि खरीद कर अथवा कभी-कभी नकद मुद्राएँ भेज देती। माँ की ओर से आये वस्त्रों और मुद्राओं को वह बहुत सम्भाल कर प्रयोग करता। उसे इस बात का ध्यान रहता कि उसकी माँ ने अपने रक्त पसीने की कमाई से न जाने किस प्रकार बचा बचा कर उसे यह वस्त्र बनाये हैं। इन मुद्राओं में उस की माँ का रक्त लगा है, यह सोच कर वह द्रवित हो जाता और सोचता मूल्यवान और पवित्र निधि उसके उज्ज्वल भविष्य की रचना में इस प्रकार लगनी चाहिए कि माँ की आत्मा को सन्तोष हो और उसके स्नेह का उचित सम्मान हो। बहुत सम्भाल कर वह उन्हें खर्च करता। एक वार उसने अपनी अपनी माँ को लिखा—

परम पूज्या माता जी

चरण स्पर्श !

आप अपनी पुनीत अत्यात्प आय में से जो कुछ बचाकर भेजती हैं, उसमें मैं आपके आँसू और आपका पवित्र देह का रक्त लगा देखता हूँ। आपके शुभ आशीर्वाद से मुझे यहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं है मैं बहुत सुखी हूँ और आपके इस स्नेह प्रसाद के बिना भी मेरा जीवन चल सकता है। मैं यह देख कर दुखित हो उठता हूँ कि इस आयु में भी जब कि मैं १८ वर्ष का हो चुका आप पर भार बना हुआ हूँ। मेरा कर्तव्य तो यह था कि आपको सुख देता। इसके विपरीत आपके लिए मैं एक समस्या बना हुआ हूँ। आत्म ग्लानि मुझे परेशान कर देती है। आप सुखी रहें, यदि मैं आपको अभी कुछ नहीं दे पाता तो आप पर भी भार

न बनूं इसी उद्देश्य से प्रार्थना है कि आप अपने पारिश्रमिक को केवल अपने लिए ही उपयोग किया करें। आपका स्नेह अमर है, यह मैं जानता हूं अतः मुझे लज्जित न किया करें।

उपाध्यायजी की असीम कृपा है मैं अपने सहपाठियों में अग्रणीय हूं यह सब आपके आशीर्वाद का फल है। मुझे आशा है कि मैं अपनी आशाओं को फलीभूत करने योग्य बन सकूं गा। मुझे केवल आपका आशीर्वाद चाहिए। अपने स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया करें।

आपका पुत्र
कपिल

इस पत्र को पाकर यशा को अपने पुत्र पर गर्व हुआ। वह सोचने लगी। युवावस्था में ध्यान जिस ओर चला जाता है और जिस कार्य में लगन होती है उसी ओर उसी कार्य में युवक सफलता के सोपान पार करता हुआ चला जाता है। शब्दों का कोई मूल्य नहीं है यह मानने वाले कितने भोले हैं नहीं जानते कि शब्दों में वह शक्ति है कि मनुष्य के जीवन को क्षण भर में बदल डालते हैं। कौन जानता था कि उच्छृंखल व अनुरागी कपिल एक दिन विवेक की साक्षात मूर्ति बन जायेगा कर्तव्य का उसे इतना बोध हो जायेगा। उस दिन जब उसने उसकी दुर्बलता पर कटाक्ष किया था कितना व्यग्र हो उठा था वहीं उसके अन्तर में निद्रित सुप्त विवेक उस दिन अंगड़ाई लेकर जाग उठा था और विवेक का जागरण ही मनुष्य को विकासोन्मुख करने में सफल होता है, इसी सिद्धांत के अनुसार मेरे जलते शब्दों ने कपिल की सोई आत्मा को जाग्रत करके उसके जीवन को नया मोड़ दिया। है तो वह भी राज्य पुरोहित के परिवार का उच्चकुल ताप ही।

यशा सोचने लगी थी— एक दिन कपिल आयेगा। अपने साथ पांडित्य का भण्डार लायेगा लोग उसकी विद्या की सराहना करेंगे और यह सराहना राज्याध्यक्ष के कानों तक पहुंचेगी। तब राज्याध्यक्ष

कपिल को अपने दरबार मे निमन्त्रित करेगा और वहाँ जाकर कपिल अपनी योग्ता से सबकी चकित कर देगा। उसका सम्मान होगा और शकुनीदत्त का आसन डोल उठेगा। तारे उसी समय तक ज्योति पुंज लगते हैं जब तक आकाश मे चन्द्रमा उदय नही होता, जब एक ही चन्द्रमा गगन में अपनी रश्मियाँ बिखरने लगता है, अगणित तारागण का प्रकाश घूमिल पड जाता है, वे टिमटिमाते शिथिल दीपक बन कर रह जाते हैं। कपिल भी कौशाम्बी के तालाम्बर मे पूर्णिमा का चन्द्रमा बनकर उदय होगा और उस दिन जीवन का सारा तिमिर विलुप्त हो जायेगा, वह धन्य हो जायेगी। प० काश्यप की ख्याति एक बार फिर जाग्रत होगी। शकुनीदत्त फिर धूल मे मिल जायेगा। ओह! कितना उल्लास पूर्ण दिन होगा वह ?"

यशा की आंखो यह स्वप्न मचलने लगा और उसके मुख मण्डल की उदासी जो स्थायित्व पाती जा रही थी, जाती रही, उस की आंखो मे उसकी आशाएँ ज्योतिमय हो उठी।

इधर यशा के पत्रो मे प्रकट की जा रही उत्साह वर्धक आशा, जिसमे यशा के स्वप्न की झलक भी होती कपिल के मन को गुद गुदा देती और परिश्रम के कारण उसके मस्तक पर उभरे श्रमकण मुस्कराने लगते, उसकी थकान खो जाती। ताजगी उसकी रग-रग मे हिलोरे लेने लगती और वह अपने काम मे नवोत्साह से लग जाता। सैकडो मील दूर बैठी हुई यशा एक प्रकार से उसकी प्रगति का सम्बल बनी हुई थी।

प्रत्येक दिन कपिल की प्रगति का एक चरण बन जाता, प्रत्येक रात्रि उसके लिए दिन की उपलब्धि को स्थायित्व प्रदान करके भावी उपलब्धि के लिए रास्ता खोल देती। सफलताएँ मनुष्य के हृदय को प्रसन्नताओं का प्रसाद मानने आती हैं, इसी लिए तो सफलता के पथ

पर बढ़ते कपिल को जहाँ आत्म विश्वास की प्राप्ति हुई वहीं उसके मुख मण्डल की कांति में भी वृद्धि होती चली गयी। अब वह अपने स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान रख रहा था और उपाध्यायजी के मुख से निकले प्रशंसा सूचक शब्दों और माता के उत्साह वर्धक पत्रों के कारण उसको हर्ष एवं उल्लास की ऐसी निधि प्राप्त होती जाती थी जिसके कारण उसकी चतुर्मुखी प्रतिभा और उसके व्यक्तित्व का सर्वोन्मुखी विकास का पथ प्रशस्त हो रहा था।

× ×

मोहनी प्रतिदिन ठीक समय पर भोजन लेकर कपिल के पास पहुँच जाती और उस समय तक जब तक कि कपिल भोजन से निवृत्त नहीं होता वह वहीं उसके कमरे में बैठी रहती। कपिल भोजन करते समय भी अपने पाठ के सम्बन्ध में कुछ सोचता होता, अतएव दोनों में बहुत ही कम वार्ता हो पाती थी। कभी कपिल ने यह जानने की आवश्यकता ही नहीं समझी कि यह युवती जो प्रतिदिन उसके लिए भोजन लाती है, कौन है? कभी-कभी मोहनी अपनी ओर से कपिल की इस उदासीनता को देखकर उससे चिढ़ भी जाती थी पर वार्ता हो तो कदाचित कुछ वह अपनी प्रतिक्रिया को प्रकट भी करे, जब बातचीत ही नहीं होती तो कपिल को मोहनी के मनोभावों का पता भी कैसे चले। हाँ कभी-कभी कुछ ऐसा व्यवहार अवश्य ही होता जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि मोहनी कुछ खिन्न है किन्तु कपिल कभी इन बातों पर ध्यान ही न देता। उसके लिए यही पर्याप्त था कि उसे दोनों समय अच्छा भोजन मिल जाता है। हाँ दोनों एक दूसरे का नाम जानते ही थे एक दो वाक्यों का आदान प्रदान यूँ ही हो जाता था पर उन वाक्यों में कोई विशेषता न होती।

उस दिन कपिल को माँ का पत्र आया था, जिसमें उस उपाध्याय जी की ओर से यशा को लिखी गयी कविता की प्रशंसा भी उल्लेख था और यशा ने स्पष्टतया लिखा था कि वह उसकी उस और प्रशंसा को जानकर बहुत प्रसन्न है। इस पत्र ने कपिल का म मयूर नृत्य कर उठा था और उल्लास के मारे आत्म विभोर हो ग था, तभी मोहनी ने भोजन लेकर उसके कमरे में प्रवेश किया। कपि को हर्ष विभोर मुद्रा देखकर वह समझ गयी कि वह आज विशेष रूप पुलकित है। उसने भोजन एक ओर रखते हुए पूछा—"कपिल जी क्या बात है आज आप बहुत प्रसन्न प्रतीत होते हैं ?"

प्रफुल्लित कपिल ने कहा—'हाँ, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

प्रसन्नता का एक प्रकार का नशा सा उस समय उसके लोचनों हिलोरे ले रहा था।

"ऐसी क्या बात हो गयी ?"—मोहनी ने अपनी जिज्ञासा प्रक करते हुए कहा।

'मोहनी! आज बडी प्रसन्नता का दिन है।"

"कुछ बताते तो आप है नही। कुछ आपत्ति न हो तो मुझे भं बताइये क्या बात है ?"

"मै परीक्षा मे पास हो गया था ना ?" कपिल ने कहना आरम्भ किया।

'मुझे क्या मालूम ?"

"अरे तो तुझे यह भी ज्ञात नही, मैं अपनी कक्षा मे प्रथम आया, मुझे पुरस्कार मिला है।"

"बडी प्रसन्नता की बात है।"

"हाँ, हाँ प्रसन्नता की तो बात है ही, मेरी माँ [illegible] ।त से

बड़ी प्रसन्न है। उसका भाज पत्र आया है सो तुम स्वयं पढ़ो कितनी प्रसन्नता की बात है।

कपिल ने पत्र मोहनी के हाथ में दे दिया।

किन्तु कपिल को प्रसन्न देख कर जो मुख चमक चमक उठा था पत्र हाथ में आते ही उस पर शुष्क का आवरण पड़ गया। उदासी छा गयी। कपिल समझता था कि पत्र पढ़कर मोहनी भी उसकी प्रसन्नता करेगी और उसकी प्रसन्नता मे भाग लेगी। पर चेहरे पर उदासी देख आशा के प्रतिकूल यह बात पाकर वह चकित रह गया। पूछ बैठा — 'मोहनी ! तुम्हें यह हो क्या गया ?'

उदासी मोहनी बोली— कपिल बाबू ! मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।

कपिल के लिए मानो यह बात बड़ी विस्मयजनक थी कदाचित् उसे कदापि यह आशा नही थी कि जो युवती शालिभद्र की अट्टालिका से उस के लिए भोजन लाती है वह अनपढ़ होगी। उसने कहा— 'मोहनी क्या तुम अनपढ़ हो ? शालिभद्र सेठ की अट्टालिका में रहकर भी तुम अशिक्षित हो। आश्चर्य की बात है।'

अट्टालिका में रहने वाली दासी शिक्षित भी अवश्य हो, यह आप ने कैसे मान लिया ?"

'किन्तु तुम दासी तो नहीं हो। सेठजी तो तुम से बहुत स्नेह रखते हैं।'

इसीलिए तो मुझे आपकी सेवा का कार्य भी मिला हुआ है, क्या यही उनकी कृपा पर्याप्त नहीं है ?"

'तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हें पढ़ाया क्यों नहीं ?"

गम्भीरता का आवरण कुछ गहरा हो गया वह बोली— 'निर्धन व्यक्ति कैसे जीवित रहे यही समस्या ऐसी बाटिल रहती है कि उसे कुछ

उस दिन कपिल की माँ का पत्र आया था, जिसमे उसने उपाध्याय जी की ओर से यशा को लिखी गयी कपिल की प्रशसा का भी उल्लेख था और यशा ने स्पष्टतया लिखा था कि वह उसकी उन्नति और प्रशसा को जानकर बहुत प्रसन्न है। इस पत्र मे कपिल का मन मयूर नृत्य कर उठा था और उल्लास के मारे आत्म विभोर हो गया था, तभी मोहनी ने भोजन लेकर उसके कमरे मे प्रवेश किया। कपिल की हर्ष विभोर मुद्रा देखकर वह समझ गयी कि वह आज विशेष रूप से पुलकित है। उसने भोजन एक ओर रखते हुए पूछा—"कपिल जी। क्या बात है आज आप बहुत प्रसन्न प्रतीत होते है ?"

प्रफुल्लित कपिल ने कहा—'हाँ, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

प्रसन्नता का एक प्रकार का नशा सा उस समय उसके लोचनो मे हिलोरे ले रहा था।

"ऐसी क्या बात हो गयी ?"—मोहनी ने अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।

'मोहनी। आज बडी प्रसन्नता का दिन है।"

"कुछ बताते तो आप हैं नही। कुछ आपत्ति न हो तो मुझे भी बताइये क्या बात है ?"

"मैं परीक्षा मे पास हो गया था ना ?" कपिल ने कहना आरम्भ किया।

"मुझे क्या मालूम ?"

"अरे तो तुझे यह भी ज्ञात नही, मै अपनी कक्षा मे प्रथम आया, मुझे पुरस्कार मिला है।"

"बडी प्रसन्नता की बात है।"

"हाँ, हा प्रसन्नता की तो बात है ही, मेरी माँ भी इस बात से

बड़ी प्रसन्न है। उसका मान पत्र आया है तो तुम स्वयं पढ़ो कितनी प्रशंसा की बात है।

कपिल ने पत्र मोहनी के हाथ में दे दिया।

किन्तु कपिल को प्रसन्न देख कर जो मुख चमक उठा था पत्र हाथ में आते ही उस पर दुःख का आवरण पड़ गया। उदासी छा गयी। कपिल समझता था कि पत्र पढ़कर मोहनी भी उसकी प्रशंसा करेगी और उसकी प्रसन्नता में भाग लेगी। पर चेहरे पर उदासी देख आशा के प्रतिकूल यह बात पाकर वह चकित रह गया। पूछ बैठा —"मोहनी! तुम्हें यह हो क्या गया?"

उदासी मोहनी बोली—'कपिल बाबू! मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।

कपिल के लिए मानो यह बात बड़ी विस्मयजनक थी कदाचित् उसे कदापि यह आशा नहीं थी कि जो युवती धनिमत्र की अट्टालिका में रह के लिए भोजन लाती है वह अनपढ़ होगी। उसने कहा—'मोहनी क्या तुम अनपढ़ हो? धनिमत्र सेठ की अट्टालिका में रहकर भी तुम अशिक्षित हो। आश्चर्य की बात है!'

'अट्टालिका में रहने वाली दासी शिक्षित भी अवश्य हो यह आप ने कैसे मान लिया?'

'किन्तु तुम दासी तो नहीं हो। सेठजी तो तुम से बहुत स्नेह रखते हैं।

इसीलिए तो मुझे आपकी सेवा का कार्य भी मिला हुआ है, क्या यही उनकी कृपा पर्याप्त नहीं है?'

'तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हें पढ़ाया क्यों नहीं?

गम्भीरता का आवरण कुछ गहरा हो गया वह बोली—'निर्धन व्यक्ति कैसे जीवित रहे यही समस्या ऐसी जटिल रहती है कि उसे तुम

झाने मे ही उसका सारा जीवन चला जाता है। जिसे भर पेट रोटी न मिले वह शिक्षा का स्वप्न कैसे देख सकता है ?"

कपिल भी कुछ गम्भीर हो गया और पूछ बैठा—"तो क्या तुम्हारे मात पिता निर्धन हैं ? कहां है वे ? तुम उनके पास ही क्यों नहीं रहती ?"

"यह एक लम्बी कहानी है और व्यथा पूर्ण भी।"

कपिल ने चकित होकर मोहनी की ओर देखा और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मोहनी दुःख और उत्पीड़न की साक्षात् मूर्ति है, उसके जीवन की कथा विपदाओं से भरी है।

"मोहनी ! तुम इतने दिनों से मेरे लिए भोजन लाती हो, कभी भूलकर भी तुमने अपनी व्यथा मुझे न सुनायी।—"कुछ विस्मय प्रकट करते हुए कपिल बोला।

"आपको इतना अवकाश ही कहां है जो आप अपने निकट भी दृष्टि डाल सकें। पुस्तकें ही आप का पीछा नही छोड़ती। आप तो मुझ अभागिन से बात भी करना अच्छा नही समझते।"—मोहनी ने दुःख पूर्ण मुद्रा मे कहा।

कपिल को अपने पर कुछ लज्जा सी आयी। वह सोचने लगा कि वह अपने म इतना खो गया है कि वास्तव मे उसे अपने चारों ओर दृष्टि डालने का भी ध्यान नही रहता। विपदाओं और कठिनाइयों मे पला हुआ व्यक्ति दूसरे की दुःख पूर्ण गाथा पर अवश्य ही ध्यान दिया करता है। अत आज उसे मोहनी की गाथा सुनने की इच्छा हो आयी। उसने कहा—"मोहनी ! मैं नही जानता था कि अट्टालिका की गोद मे रहने वाली विपदाओं और पीडाओं का इतिहास भी अपने साथ रखती है। मैंने तुम्हे कभी दुखित भी नही देखा, जब भी तुम आयी, तुम्हारे बदन पर मुस्कान खेलती देखी। मुझे क्या पता था कि तुम्हारी मुस·

काम के पीछे दुःख का भण्डार छुपा हुआ है। अच्छा यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो अपने सम्बन्ध मे मुझे भी कुछ बताओ।"

मोहनी ने एक दीर्घनिश्वास छोड़ा उसके जीवन की व्यथा जाग उठी थी वह कहने लगी— 'कपिल जी! आपको क्या बताऊं ?

मैं भी आप ही की भाँति दूर देश की रहने वाली हूं। जिस दिन आपको सेवा का भार मुझे सौंपा गया था उस से तीन दिन पूर्व ही मैं यहां आयी थी। एक दुःखे पेट मैने जन्म लिया। मेरे पिता —— ——

मोहनी ने अपनी दुःख पूर्ण गाथा कहनी आरम्भ करदी और कपिल बड़े ध्यान से उसे सुनने लगा। सुनाते-सुनाते कभी-कभी मोहनी की आँखें अश्रुपात करने लगती और कपिल भी शोकाकुल हो जाता। वह अपने आँसुओं को पीने का प्रयत्न करता रहा। सुनते-सुनते वह सोचने लगा कि यह भी उसी प्रकार दुःखों की मार से त्रस्त विपन्न है जिस प्रकार वह और उसकी माँ! पीड़ित को दूसरा पीड़ित अपनी सुनाता है तो उसे अपने पर बीती बातें याद आ जाती हैं।

मोहनी ने अपनी दुःख गाथा समाप्त करते हुए कहा—"कपिल जी! आप के लिए यह एक कहानी मात्र है बहुत सी कहानियां मनुष्य को क्षण मात्र के लिए उद्विग्न कर देती हैं सम्भव है मेरी इस गाथा से आप को भी कुछ खेद हुआ हो पर विपत्तियों और दुःखों को सहते समय मानव की क्या दशा होती है यह वही जानता है जो ऐसी परिस्थितियों से गुजर चुका हो। मैं रहती अवश्य ही आज अट्टालिका मे हूं। पर इतनी भीड़ भड़क्का के रहते हुए मैं अकेली हूं। न किसी से कुछ कह सकती हूं और न किसी को मेरी सुनने का अवकाश ही है। जिस स्थान को लेकर मैं सेठ जी के साथ आयी थी वह अधूरा है। मैं वही अकेली दुःखी अपढ़ बुद्धिहीन अबला हूं जो उस दिन जो जब सेठजी ने मुझे आत्म-हत्या करने से रोका था। पर आप मेरी व्यथा को क्या समझ पायेंगे ?"

कपिल मौन था, उसके हृदय मे शोक का तूफान उठ खडा हुआ था। अपने को सयमित रखना उसके लिए असम्भव हो रहा था, उसके नेत्र सजल थे, अश्रु-रत्न चू पडना चाहते थे, पर अपने को किसी प्रकार नियन्त्रित करने का प्रयत्न कर रहा था। गला अवरुद्ध था। उसे भय था कि मुँह खोला और आंसू बहे।

कुछ देर वह इसी प्रकार मौन रहा। मोहनी ने अपनी आंखे पोछ डाली वह उठी और लोटे में जल लाकर बोली—"लीजिए हाथ धो लीजिए, भोजन कर लीजिए। आज आपका मेरे कारण बहुत समय नष्ट हो गया। इसके लिए मुझे क्षमा कर दीजिए।"

कपिल ने अनमना होकर अपने हाथ धोने के लिए फैला दिए और भोजन के लिए आसन पर जा बैठा। मोहनी ने थालसामने रख दिया। उसका हाथ रोटी पर था और मस्तिष्क विचारो मे उलझा हुआ कदाचित उसे उस समय यह भी ज्ञान नही था कि वह क्या कर रहा है। अनायास ही बोल पडा—"मोहनी! तुम भी मेरी ही तरह पीडित और दु खित हो मुझे भी *व्यथा और दु खो ने पाला पोसा है। मेरी भी* जीवन गाथा तुम्हारी ही भांति कठिनाइयो और अभावो का इतिहास है। मां ने आंसुओ को पीकर और ससार भर की ठोकरें खा-खाकर मुझे पाला और जब मैं बडा हुआ तो मेरी उद्दण्डता, बुद्धिहीनता और शिक्षा की ओर से उदासीना उसके शोकपूर्ण जीवन के लिए अभिशाप बन गयी। तुम नही जानती मोहनी! मै भी विपदाओ की गोद में पल कर बडा हुआ हूं। और आज भी मेरी मां कौशाम्बी मे मजदूरी करके अपना पेट पालती है। मै यहां दान और भिक्षा मे जीवन यापन कर रहा हूँ। यह तो तुम जानती ही होगी। पर मैं अपने भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए दिन रात मेहनत करता हूं। और अब मुझे आशा है कि हमारे दिन अवश्य ही फिरेगे। तुम क्यो नही पढ लेती?"

"मेरे भाग्य में पढ़ना कहाँ है ?"

कपिल ने शोघ्रता से मुंह में रक्खा कौर निगलकर कहा– कैसी बात करती हो मोहनी ! मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। आत्म विश्वास की आवश्यकता है आत्मिक बल उत्पन्न करो। संसार में कौनसी प्राप्य वस्तु ऐसी है जिसके लिए मनुष्य सच्चे दिल से प्रयत्न करे और वह प्राप्त न हो। यह भूल जाओ कि हमें किसी भी प्रकार की शक्ति किसी भी मानवोत्तर शक्ति की कृपा से प्राप्त होती है। मनुष्य स्वयं अपने लिए अपने भाग्य के द्वार खोलता है तुम चाहो तो अपनी दुःखों की बेड़ियाँ काट सकती हो। किन्तु इसके लिए तुम्हें सतत निरन्तर और अथक प्रयत्न करना होगा। त्याग की भावना लेकर एकाग्रचित्त होकर लग जाओ। संसार के समस्त आकर्षणों और अपने विगत इतिहास को भूल जाओ फिर मैं कह सकता हूँ कि तुम अवश्य ही सफल हो जाओगी।

'कदाचित आप ही की बात सत्य हो– मोहनी ने गम्भीरता पूर्वक कहा– किन्तु किसी भी काम के लिए कुछ साधनों की तो आवश्यकता होती ही है।'

तुम तो ऐसे स्थान पर हो जहाँ साधनों का अभाव है ही नहीं शालिभद्र से क्यों नहीं कहती कि वह तुम्हारी शिक्षा का प्रबन्ध करदे। —कपिल ने एक रास्ता सुझाते हुए कहा।

"वे मुझे रहने के लिए स्थान, भोजन और वस्त्र देते हैं उनकी इतनी कृपा ही बहुत है। शिक्षा के प्रबन्ध का उन पर भार डालना मुझे उचित नहीं लगता। जो धन वे मेरे ऊपर व्यय करेंगे वह किसी पात्र जैसे छात्र पर व्यय हो तो मेरे विचार से अधिक उपयोगी होगा। —मोहनी बोली।

कपिल भोजन खाता जाता था और सोचता भी जाता था। अब वह इस बात पर विचार कर रहा था कि मोहनी की शिक्षा का

क्या प्रबन्ध हो। तभी उसे ध्यान आया कि वह भी तो उसे पढ़ा सकता है। यह विचार आते ही वह बोल उठा। "मोहनी! तुम्हें पढ़ाने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।"

मोहनी यह सुनकर चकित रह गयी। वह सोचने लगी जो स्वयं पढ़ने पर के लिए दूसरों पर अवलम्बित है वह उसकी शिक्षा का भार कैसे वहन कर सकता है?

मोहनी को विचार-मग्न देख कपिल बोला—"तुम जब भोजन लेकर आया करोगी, तभी कुछ पढ़ा दिया करूँगा। पुस्तकें तुम्हारे लिए मैं किसी विद्यार्थी से मांग दूँगा। जो विद्यार्थी कोई कक्षा पास कर लेते हैं उनकी पुस्तकें तो खाली हो ही जाती हैं, बस वे ही पुस्तकें तुम्हें मिल जायेगी।"

"किन्तु क्या इसमे आपको असुविधा न होगी?"

"नही तो, थोडा सा समय, जो मैं तुम्हें दे सकता हूँ दिया करूँगा।"

मोहनी को अपार हर्ष हुआ, जैसे उसे अकस्मात ही असख्य स्वर्ण मुद्राएँ मिल गयी हो, वह हर्ष विभोर होकर बार-बार कपिल का धन्य-वाद करने लगी।

यह था प्रथम दिन जब कि कपिल और मोहनी के बीच मे स्थित दूरी ने सकुचित होना आरम्भ किया था। वास्तव मे उन दोनो के वास्तविक परिचय का भी वही प्रथम दिन था।

मोहनी का मन मयूर नाच रहा था। जब वह थाल लेकर वापिस चली तो उसके पैर भूमि पर न पड रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो वह हवा मे उड रही हो। दो वर्ष के पश्चात स्यालकोट में प्रथम बार उसे इतना हर्ष हुआ था। उसे अनुभव हो रहा था मानो उसका आज भाग्योदय हुआ है।

कपिल ने मोहनी को पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। मोहनी कपिल का जीवन देख चुकी थी कि यदि उसे भी पढ़ने का अवसर मिले तो वह इतनी ही एकाग्रचित होकर अध्ययन किया करे। वह पुस्तकों में ही लीन हो जाया करे और कपिल की ही भांति परिश्रम करके अपने पाठ को याद कर लिया करे। जो बात वह सोचा करती थी उसे क्रियान्वित करने का जब अवसर आया तो वह अपने विचारों की हद सिद्ध हुई। थोड़ी सी देर के लिए कपिल उसे पढ़ाता था यदि कभी अधिक देर हो जाती तो वह स्वयं ही पढ़ना बन्द कर देती कहती— अब आप अपना काम कीजिये। बस इतना ही बहुत है।"—और कपिल इस बात से बहुत प्रसन्न होता। वह अपनी पुस्तकों में उलझ जाता।

ऐसा कदाचित् ही कोई दिन आता हो जब कि कपिल को मोहनी अपना पाठ न सुना सकी हो। वह कण्ठस्थ करके ले आती और एक आज्ञाकारिणी शिष्या की भांति वह सब काम पूरा करके लाया करती जो कपिल बताता। कपिल के जीवन से तो वह पहले से ही प्रभावित थी पर उसे पढ़ाने का कार्य लेकर उसने जो कृपा की थी उसके कारण मोहनी उसे श्रद्धामु मय की दृष्टि से देखने लगी। कभी-कभी वह बिस्तर पर लेटकर सोचा करती— कितने अच्छे हैं कपिल जी ! मेरे लिए कितना समय लगाते हैं कितनी अच्छी प्रकार पढ़ाते हैं। उनके व्यवहार में कितनी पवित्रता है। उनका हृदय शुद्ध और निर्मल है। निस्वार्थ सहायता और यह महान् कार्य प्रतिपादन करने की उनकी क्षमता सभी कुछ तो सम्मानीय और हृदय ग्राह्य है। उनके इस अहसान से भला मैं कभी उऋण भी हो सकती हूँ ?" सोचते-सोचते उसके नेत्रों के सामने कपिल का खिलता हुआ चेहरा नाच उठता। कभी कपिल की गम्भीरता उसकी आँखों में बस जाती और कभी उसके अधरों पर उभरती मन्द-मन्द मुस्कान मूर्तिमान होकर उसके सामने आ जाती।

और वह कपिल के शरीर के विभिन्न अंगों की आलोचना मन ही मन करने लगती।

एक ओर कपिल अध्ययन के क्षेत्र में प्रगति कर रहा था दूसरी ओर मोहनी उसके पद चिह्नों का अनुसरण कर अपने अध्ययन कार्य को आगे बढ़ा रही थी, एक ओर कपिल एक प्रशंसनीय सुछात्र के रूप में था तो दूसरी ओर एक सफल अध्यापक के रूप में। अब वह अपने अध्ययन के साथ मोहनी की शिक्षा की भी चिन्ता करने लगा। और उसके इन्ही दो सफल रूपों ने मोहनी को अपने प्रभाव पाश में आबद्ध कर लिया। मोहनी संसार से दूर होती चली गयी, और कपिल के निकट। यूँ कहिए कि वह कपिल के जितने ही निकट पहुँचती जा रही थी संसार में उतनी ही दूर चली जा रही थी। उसके हृदय और मस्तिष्क पर अध्ययन और कपिल छाये रहते। कपिल की जो बातें कभी उसे खला करती थी, वही अब प्रिय लगती और अब वह जब भी भोजन लेकर जाती, जितनी देर कपिल को भोजन जीमने में लगती, उतनी देर वह उसके वस्त्रों तथा पुस्तकों आदि को क्रमबद्ध उचित प्रकार से रखने और सजाने का काम करती। कपिल उसे रोकता रह जाता और वह हठी व्यक्ति की भाँति अपना काम कर ही जाती।

और उस दिन की बात तो कपिल को सोचने को बाध्य ही कर गयी जब वह उसकी प्रतीक्षा में कई घण्टे बैठी रही थी।

श्रावण के कृष्ण-पक्ष की अमावस्या अपने पूरे वेग से धरा पर तिमिर वर्षा कर रही थी, आकाश पर काले काले मेघ गज मस्ती में झूम रहे थे। शीतल पवन वक्ष को भेदने का प्रयास करती हुई आती थी और गात को कम्पित करती हुई चली जाती थी। कभी-कभी बिजली कौंध कर पृथ्वी के प्रांगण में आच्छादित अन्धकार साम्राज्य को चीर डालती और साँप के रूप में बल खाती सड़के एक बार जोर से चमक उठती। पर ऐसी भयानक रात्रि में भी कपिल नगर से दूर वन की ओर से लौट

रहा था। उपाध्याय जी रोगग्रस्त हो गए थे और वैद्यराज ने एक जड़ी बताई थी जो वन से ही प्राप्त हो सकती थी। स्थान और पहचान बताकर उन्होंने कहा था कि शीघ्रातिशीघ्र यह जड़ी मँगाली जावे। परन्तु मास की काली घटाओं का देख कोई भी ऐसा न निकला जो उस जड़ी का लाने का साहस करता। तब कपिल को पता चला और उसने वैद्यराज से सब कुछ मालूम करके स्वयं जाने का निर्णय कर लिया।

उपाध्यायजी ने यह सुनकर कपिल को अपने पास बुलाया और बोले— 'कपिल! काली घटाएँ छायी हैं और वह स्थान जहाँ जड़ी मिलेगी यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते ही कदाचित सूर्यास्त हो जावे। घनघोर घटाओं के कारण अमावस्या की कालिमा और भी गहन हो जायगी। सम्भव है वर्षा होने लगे। तुम रास्तों से परिचित नहीं हो। कहाँ मारे मारे फिरोगे। मैं नहीं चाहता कि तुम अपने को जोखिम में डालो।'

कपिल ने उत्तर दिया— 'गुरुदेव! आप में गुरु का हृदय बोल रहा है। और मेरे भीतर शिष्य का हृदय धड़क रहा है। मैं आज ही आपके काम नहीं आऊँगा तो कब काम आऊँगा। आपके स्वास्थ्य से लाभ उठाने वाला मैं हूँ तो अस्वस्थता की दशा में कष्ट उठाने कौन आयेगा? आपका आशीर्वाद साथ है तो निश्चिन्त रहिए, मुझे कुछ भी भय नहीं है।'

और वह हाथ में लाठी लेकर वहीं से चल खड़ा हुआ था। उपाध्याय जी का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ वहाँ पहुँचते-पहुँचते ही सूर्यास्त हो गया अन्धकार छा जाने से पूर्व ही जड़ी खोज लेने में तो सफल हुआ पर जब लौटने लगा तो घनघोर तिमिर के आवरण में छुप गयी। उसे शीघ्र वापस पहुँचने की चिन्ता थी पर अब एक और दुश्चिन्ता ने आ घेरा कि कहीं वह पथ से भटक न जावे। किन्तु कपी-

ऐसी चीजे भी मनुष्य के बहुत काम आती हैं, जिनको देख कर साधारणतया वह भयभीत हो जाया करता है। मेघाच्छादित आकाश में मेघ खण्डो का उदर चीरकर, नाग की लपलपाती विषैली जीभ की भांति चमक उठने वाली भयोत्पादिका तडित, कभी-कभी अग्नि रेखा के रूप में तरंगित होकर पगडण्डी का पता दे देती और कपिल निर्भीकता पूर्वक पैरो की गति तीव्र कर देता। वन के विषैले, भयानक और नर भक्षी जीव-जन्तु अग्नि रेखा तडित की भीषण ध्वनि और मेघ गजो की चिघाडो से भयभीत होकर इधर से उधर भागते, छुपते और आश्रय की खोज मे तडप उठते थे, कभी कभी उनके भीषण शब्द कपिल के कानो मे हल-चल पैदा कर देते और कभी कपिल भयानक ध्वनियो को सुनकर कांप भी उठता, पर उसे उपाध्यायजी की रोग-शैया का ध्यान आता आगे बढ जाता।

जिस समय वह उपाध्याय इन्द्रदत्त के घर पहुँचा रात बहुत हो चुकी थी। सभी के चेहरे खिल उठे और प्रसन्न होकर उसके साहस की प्रशसा करने लगे। पर कपिल ने अपनी प्रशसा पर ध्यान न दे जल्दी से औषधि तैयार करने का कार्य सम्भाला।

जब औषधि लेकर वह उपाध्याय के पास पहुँचा, इन्द्रदत्त ने कठिनाई से बैठते हुए कहा—"कपिल! तुमने आज जितना कष्ट उठाया है, उसे देख मे कह सकता हूँ कि अपने गुरु के लिए इतना कुछ करने वाला शिष्य जितने अधिक स्नेह का पात्र है, उतना मै तुम्हें नही दे पाया हूँ।"

"गुरुदेव! आपने जितना मेरे लिए किया है उसका मूल्य मैं अपने प्राण देकर भी नही चुका सकता।"—कहते हुए कपिल ने उपाध्याय जी को सहारा देकर औषधि दी।

कपिल कितनी ही देर तक उपाध्यायजी के पैर दबाता रहा और जब स्वय उपाध्यायजो ने ही जोर देकर कहा कि रात्रि बहुत बीत

चुकी अब तुम जाकर विश्राम करो तब विवश होकर कपिल को अपने कमरे की ओर चलना पड़ा। पर उसे अनुभव होता रहा मानो उपाध्याय जी को उसकी आवश्यकता है और ऐसे समय कमरे पर आकर वह भूल कर रहा है उसे गुरुदेव की सेवा में ही लगा रहना चाहिए था। किन्तु उसे यह सोचकर सन्तोष होता कि वह स्वयं तो वहां से नहीं चला गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए ही वह आया है।

ज्योंही वह अपने कमरे पर आया तड़ित के क्षणिक प्रकाश में उसने देखा कि कमरे के बन्द द्वार के सामने एक नारी बैठी है। उसके मन के एक कोने से एक आवाज आयी— 'मोहनी होगी।

फिर कुछ शंका हुई। इतनी रात को मोहनी यहाँ क्यों रह गयी होगी। किन्तु जब वह निकट गया तो यद्यपि अन्धकार का जाला आव रण मोहनी और उसके बीच में पड़ा हुआ था तथापि उसने पहचान लिया कि पास में यौवन का दाम रक्खे मोहनी ही बैठी है।

पैरों की आहट सुन मोहनी हड़बड़ा कर उठी।

मोह! तुम? इतनी रात गए तक बैठी हुई तुम यहाँ क्या कर रही हो?"—आश्चर्य प्रकट करते हुए कपिल ने प्रश्न किया।

"आपकी प्रतीक्षा।" मोहनी बोली।

आधी रात तक मेरी प्रतीक्षा करने की तुम्हें क्या आवश्यकता थी? —किवाड़ खोलते हुए कपिल ने तनिक तमक कर पूछा। और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए वह दीपक खोजने लगा।

'तो क्या आपको भूखा ही रहने देती? —मोहनी ने प्रश्न का उत्तर प्रश्न से दिया।

दीपक जला कर वह मोहनी को लक्ष्य करके बोला— 'जब तुमने देखा कि कमरा बन्द है तो वापिस क्यों नहीं लौट गयी थी?

अन्यमनस्क होकर मोहनी बोली—"क्रुद्ध तो मुझे होना चाहिए था कि अब तक न जाने कहाँ-कहाँ फिरते रहे, खाने की चिन्ता ही नहीं की और उलटे आप मुझ पर नाराज हो रहे हैं। अपराध स्वयं करते हैं और रोष दूसरे पर दिखाते हैं।"

कपिल को न जाने क्यों क्रोध आ गया, उसने आवेश पूर्वक कहा—"मै यहाँ नही था तो चली क्यों नहीं गयी थी, मैने अपराध किया था तो उसका दण्ड मैं भोग लेता, भूखा रह जाता। यहाँ क्या मेरे कहने मे बैठी रही जो मुझ पर क्रोध दिखाओगी ?"

"और किसके कारण बैठी रही ?—तनिक तेज स्वर मे मोहनी बोली—यहां अँधेरे मे अकेली प्रतीक्षा मे बैठी रही, किसके लिए ? अपने लिए या आपके लिए ?—मैं यूँ न बैठी रहती तो रातभर पेट मे चूहे दौडते।"

"कष्ट तो मुझे ही होता या तुम्हे होता ?"

"आपको कष्ट होता तो क्या मुझे चैन आता ?"

मोहनी शीघ्रता में कह तो गयी, परन्तु फिर स्वय ही उसे अनुभव हुआ कि उसमे कदाचित् कोई भूल हो गयी और लजा कर उसने अपनी गरदन झुका ली। कपिल को भी उसके शब्दो में कुछ आश्चर्य हुआ और वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया।

जब बोला तो उसका स्वर कोमल था—"मोहनी! तुम्हे आज मेरे कारण बहुत कष्ट हुआ। इसका मुझे बहुत खेद है।"

मोहनी चाहते हुए भी कुछ न बोल पायी।

जब कपिल खाना खाने लगा तो मोहनी ने अन्यमनस्क सी होकर कहा—"क्या सच ? आपको मेरा यहाँ इतनी रात गए तक रुके रहना बुरा लगा ?"

कपिल निरुत्तर था।

कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा करके मोहनी ने पूछा— क्या मैं पूछ सकती हूँ कि आज आप इतनी रात गए तक कहाँ थे ?'

'उपाध्यायजी रुग्ण हैं उनके लिए वन म औषधि लेने गया था।"

क्या औषधि दिन में नहीं आ सकती थी ?'

'गया तो दिन म ही था लौटते हुए रात हो गयी।"

'ऐसी भी कितनी दूर चल गए थे ?"

"बहुत दूर।"

आपको यहाँ के वनों के रास्ते ज्ञात हैं ?"

'नहीं।

"तो फिर ऐसे भयानक वातावरण मे जबकि आकाश पर घन घोर घटाएँ हैं, वन म छिपसे घोर भयानक जीव-जन्तु हैं क्या रास्तों से अपरिचित आप जैसे परदेशी व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई नहीं था जो जा सकता ?'

"नहीं।

"अपनी जान जोखिम मे डालते हुए आपका जी नहीं घबराता।"

कपिल उत्तर देते-देते कुछ तंग आ गया था अत पुन आवेश में आकर वह बोला— 'मोहनी ! तुम तो ऐसे प्रश्न कर रही हो जैसे मेरी तुम्हें बहुत चिन्ता हो ?—फिर बात पलटते हु बोला— 'तुम्हें मालूम है वे मेरे गुरु हैं और शिष्य को गुरु के लिए प्राणों पर भी खेल जाना चाहिए।

पहली बात का कोई उत्तर न दे मोहनी ने कहा— 'मैं ही आपकी

प्रतीक्षा मे अब तक बैठी रही तो कौन-सा अपराध कर डाला ? आप भी तो मुझे पढाते हैं ।"

कपिल हँस पडा ।

भोजन करके कपिल ने कहा —"इतनी रात गए तुम कैसे वहाँ तक जाओगी ?"

"जैसे आप वन से चलकर यहाँ पहुँच गए ।"

इतना कहकर मोहनी वहाँ से चली गयी । परन्तु कपिल को अपने सम्बन्ध मे सोचते रहने के लिए कई बात छोड गयी । और उस रात उसका मस्तिष्क मोहनी मे ही उलझा रहा ।